12
हजरत मुहम्मद

हजरत मुहम्मद संसार के महान पुरुषों में से एक हैं, जिनके मजहब ने मनुष्य के एक बड़े समुदाय को प्रभावित किया है। आप अपने लक्ष्य के लिए समर्पित, पक्के इरादे के तथा लौहपुरुष थे। आपका जीवन संघर्षमय था, परन्तु आप उसमें से खरे सोने के समान उत्तीर्ण होकर इतिहास में अमर हो गये।

1. जन्म स्थान और जन्म

अरब देश में मक्का एक नगर है। उसमें एक कुरैश वंश था। इस वंश में पिता 'अब्दुल्ला' माता 'आमिना' से आपका जन्म हुआ। आपके जन्म की तारीख 11 नवम्बर सन् 569 ई० है। आपके पितामह का नाम अब्दुल मुत्तलिब था। अब्दुल मुत्तलिब के बारह पुत्र थे। उनमें पांच प्रसिद्ध हुए। एक अब्दुल्ला, जो हजरत मुहम्मद के पिता थे। दूसरे अबूतालिब जिन्होंने हजरत मुहम्मद का चलाया इसलाम मजहब तो नहीं स्वीकार किया, परन्तु अपने जीवन भर उनके विरोधियों से उनकी रक्षा की। तीसरे तथा चौथे 'हमजा' और 'अब्बास' थे, जिन्होंने इसलाम स्वीकारा था। और पांचवें थे 'अबूलहब' जो इसलाम के कट्टर विरोधी थे। कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद हजरत इब्राहीम के पुत्र इस्माईल के बाद करीब साठवीं पीढ़ी[1] में पड़ते हैं। ये वही 'इब्राहीम' तथा 'इस्माईल' हैं जिनसे ईश्वर के नाम पर कुर्बानी (जीववध) चली। कहा जाता है कि इब्राहीम ने ईश्वर को खुश करने के लिए अपने पुत्र इस्माईल का वध करना चाहा, परन्तु उनका कुछ न होकर एक भेड़ा का वध हो गया। फिर कुर्बानी चल पड़ी।

अब्दुल्ला की जब आमिना से शादी हुई तब अब्दुल्ला सत्तरह वर्ष के थे। वे शादी के बाद अपनी कुलरीति के अनुसार ससुराल में तीन दिन रहे। उसके बाद वे व्यापार के लिए शाम (सीरिया) चले गये। शाम अरब के उत्तर है। वे शाम से लौटकर जब मदीना नगर में पहुंचे, तो बीमार पड़ गये और वहीं

---

1. **बाइबिल के नये नियम के अनुसार संत ईसा हजरत इब्राहीम के बयालिस (42) वीं पीढ़ी में पैदा होते हैं। (मत्ती, 1/17)। और सन्त ईसा के 569 वर्ष बाद हजरत मुहम्मद जन्म लेते हैं। जिसमें हर पीढ़ी, पच्चीस वर्ष की मानने पर बाईस पीढ़ी होती है। अतः इस उदाहरण के अनुसार हजरत इब्राहीम के बाद चौसठ (64) वीं पीढ़ी में हजरत मुहम्मद जन्म लेते हैं। यह कोई खास अन्तर नहीं है।**

उनका देहांत हो गया। इस समय मक्का में आमिना गर्भवती थीं और समय आने पर उन्होंने हजरत मुहम्मद को जन्म दिया। इस प्रकार हजरत मुहम्मद अपने पिता का मुख भी नहीं देख सके थे।

2. पालन-पोषण

माता आमिना ने आपको पाला-पोषा, परन्तु जब आपकी उम्र छह वर्ष की हुई तब उनकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार आप अपने बचपन में ही अपनी माता की छाया से वंचित हो गये। इसके बाद आपके पालन-पोषण का भार आपके पितामह अब्दुल मुत्तलिब पर आ गया। जब हजरत मुहम्मद आठ वर्ष के हुए तब आपके पितामह भी मर गये। इसके बाद आपके चचा अबूतालिब ने आपको अपनी रक्षा में लिया और कुशलतापूर्वक उन्होंने आपका पालन-पोषण किया। दस-बारह वर्ष की उम्र में हजरत मुहम्मद बकरियां चराते तथा घर के अन्य काम-काज में हाथ बटाते रहे। जब हजरत मुहम्मद की उम्र बारह वर्ष की थी, वे अपने चचा अबूतालिब के साथ व्यापार के सिलसिले में शाम देश गये। इस प्रकार वे व्यापार का काम सीखने लगे।

3. व्यापार और पहली शादी

हजरत मुहम्मद व्यापार करने लगे। उनका काम ईमानदारी का होता था। वे स्वभाव में गम्भीर, मितभाषी तथा नेक थे। उन्होंने 'खदीजा' नाम की एक धनवान विधवा के यहां नौकरी कर ली। आपकी उम्र इस समय पचीस वर्ष की थी और खदीजा की चालीस वर्ष। उसने आपसे अपने विवाह का प्रस्ताव रखा। आपने उसे स्वीकार लिया। खदीजा भी कुरैश-कुल की थी तथा आपकी चचेरी बहन लगती थी। अंततः आपकी शादी उससे हो गयी। कहा जाता है कि खदीजा ने विवाह के समय आपको पांच सौ सोने के सिक्के दिये।

4. कुछ घटनाएं और काबे का पुनर्निर्माण

अरब के अधिक लोग काफी उद्दण्ड एवं लड़ाकू थे। वहां कबीलों में बराबर युद्ध चलता रहता था। एक युद्ध कुरैश और कैस वंश के कबीलों में हुआ। बहुत रक्तपात के बाद समझौता हुआ कि "1. देश से अशांति दूर करेंगे, 2. यात्रियों की सुरक्षा किया करेंगे, 3. पीड़ितों की सहायता किया करेंगे, 4. निर्धनों का पक्ष लेंगे तथा 5. किसी अत्याचारी को मक्का में नहीं रहने देंगे।"[1] इस युद्ध तथा समझौते में हजरत मुहम्मद सम्मिलित थे। कहा जाता है

---

1. **हजरत मुहम्मद की पवित्र जीवनी तथा संदेश, पृ० 31। लेखक अबूसलीम मुहम्मद अब्दुल हई। प्रकाशक-मकतबा अलह सनात, रामपुर, उत्तर प्रदेश। इसी ग्रंथ के आधार पर यह लेख लिखा गया है।**

कि हजरत मुहम्मद ने इस युद्ध में कुरैश कबीले को अपना योगदान किया, परन्तु उन्होंने किसी पर अपना हाथ नहीं उठाया। युद्ध के बाद जो समझौता हुआ उसमें हजरत की बड़ी रुचि थी।

कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद की करीब साठ पीढ़ी के पहले जिसे करीब डेढ़ हजार वर्ष पूर्व माना जा सकता है हजरत इब्राहीम तथा उनके पुत्र हजरत इस्माईल ने काबा का प्रथम निर्माण किया था।

हजरत मुहम्मद के आरम्भिक काल में काबा की दशा दयनीय थी। काबा में एक नीची चारदीवारी मात्र थी। वर्षा में नगर का पानी जाकर उसमें भर जाता था। मक्का वालों ने निश्चय किया कि इसे गिराकर पुन: बनाया जाय। मक्का के प्राय: सभी कबीलों ने मिलकर इसका पुनर्निर्माण किया। अन्त में बात आयी 'हजरे असवद' (एक काला पत्थर) की स्थापना की। हर कबीला चाहता था कि इसकी स्थापना हमारे कबीले का सरदार करेगा। इस बात को लेकर आपस में वातावरण गरम हो गया। तलवार उठने की बात आ गयी। अन्त में एक वृद्ध ने कहा कि कल प्रात: काल पहले जो व्यक्ति काबा में दिखाई दे उसी को पंच माना जाय, और उसका निर्णय सर्वमान्य किया जाय।

दूसरे दिन प्रात: हजरत मुहम्मद ही काबा में दिखाई दिये। अत: उन्हें पंच माना गया। उन्होंने एक चद्दर बिछायी और उस पर 'हजरे असवद' रखा तथा सभी कबीले के सरदारों को कहा कि वे चद्दर के कोने को पकड़ें और ऐसा ही किया गया। जब उसे स्थापित करने के स्थान पर ले गये, तब हजरत ने उस पत्थर को निश्चित स्थान पर रख दिया और उसकी स्थापना हो गयी। इस प्रकार एक रक्तपात टल गया।

इस समय काबा मूर्तिपूजा का केंद्र था। यहां पर 360 मूर्तियां थीं। हजरत मुहम्मद का वंश कुरैश ही काबा का पुजारी तथा प्रबन्धक था। परन्तु हजरत मुहम्मद को यह अच्छा नहीं लगता था। अतएव वे न मूर्तियों का नमस्कार करते थे और न उनकी पूजा। वे इसके लिए अपने वंश वालों का भी साथ नहीं देते थे।

5. ईश्वरोपासना और एकांतचिंतन

हजरत मुहम्मद अपने वंश तथा मक्का वालों की पतन-दशा, उनकी परस्पर फूट, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, चरित्रहीनता और अनेक भ्रष्टाचारों को देखकर उद्वेगित थे। वे मक्का से करीब पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक छोटी पहाड़ी के 'हिरा' नाम की गुफा में जाकर मक्का वालों के कल्याण के लिए विचार करते और ईश्वर से दुआ मांगते कि वह उन्हें सामर्थ्य दे जिससे जाति वालों के लिए कल्याण का काम कर सकें। वे अपने साथ कुछ खाने-पीने की

चीजें ले जाते और उसी गुफा में रहते। जब सामान समाप्त हो जाता तब पुन: घर से ले जाते। कभी-कभी उनकी पत्नी खदीजा खाना-पानी पहुंचा जातीं।

एक दिन गुफा में उपासना में बैठे हुए हजरत मुहम्मद को भावावेश आ गया और लगा कि मानो उन्हें कोई भींच एवं झकझोर रहा है और बारम्बार उनसे पढ़ने के लिए कह रहा है, परन्तु वे उसे बारम्बार उत्तर दे रहे हैं कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं। इसी के बाद उनके हृदय में एक कविता प्रस्फुटित हुई। वह इस प्रकार है—

इकरा बिसमि् रब्बिकल्ल जी ख़लक
ख़लक़ल इनसान मिन अलक़
इक़रा वरब्बुकल अकरमु-
ल्लज़ी अल्लमा विलक़लम
अल्लमल इनसाना मा-लम यलम।

अर्थात—अपने रब के नाम से पढ़, जिसने मनुष्य को जमे हुए खून से उत्पन्न किया। पढ़ तेरा रब बहुत महान है जिसने कलम के द्वारा लिखाया और मनुष्य को वह सब सिखाया जिससे वह अनभिज्ञ था।[1]

इसके बाद हजरत कांपते हुए घर गये। उन्हें लगा कि हमारे प्राण पर संकट है। खदीजा ने समझाया कि ऐसी बात नहीं है। खदीजा उन्हें एक वृद्ध ईसाई पादरी के पास ले गयीं। पादरी ने सांत्वना दी। कहा जाता है कि हजरत को गुफा में भींचने तथा पढ़ने की आज्ञा देने वाला ईश्वर का प्रमुख फरिश्ता जिबराइल था जो ईश्वर की ओर से आया था और उसी ने उक्त कविता हजरत के ऊपर उतारी थी।

इसके बाद भी हजरत मुहम्मद 'गारे हिरा' अर्थात हिरा नाम की गुफा में जाते रहे। आपका आत्मविश्वास दिनोंदिन बढ़ता गया। कहा जाता है कि जिबराइल फरिश्ता गुफा में आ-आकर आपको संतोष देता रहा और कहता रहा कि आपका नबी होना ईश्वर ने स्वीकार लिया है।

6. इसलामी आन्दोलन

इसलामी आंदोलन को दो भागों में बांटा जा सकता है, एक 'मक्की दौर' तथा दूसरा 'मदीनी दौर'। अर्थात हजरत मुहम्मद ने पहले मक्का में, और फिर मदीना में यह आंदोलन चलाया।

अपने ही लोगों में बुजुर्गों की मान्यता के विपरीत एक नये मजहब का चलाना बड़ा कठिन काम है। हजरत मुहम्मद ने जब अपना मत पक्का कर लिया, तब उन्होंने उसका प्रसार करना चाहा। उन्होंने पहले पहल अपनी पत्नी

---

1. **वही, पृष्ठ 37।**

'खदीजा' को इसलाम में दीक्षित किया। इसके बाद अपने चचेरे भाई 'अली' को, गुलाम 'जैद' को तथा मित्र 'अबूबक्र' को। इसके बाद दस-पांच लोग और इसलाम में दीक्षित हुए।

7. गुप्त नमाजें

यह ध्यान रखा जाता था कि जो इसलाम के सदस्य हैं उनके बाहर बात न जाने पाये। हजरत मुहम्मद पहाड़ की घाटी में जाकर नमाज पढ़ते। एक बार वे एक पहाड़ की आड़ में नमाज पढ़ रहे थे। संयोग से उधर से चचा अबूतालिब आ निकले। वे हजरत के एक नये ढंग की उपासना का प्रकार देखकर चकित रह गये और नमाज खत्म होने पर उन्होंने पूछा 'यह कौन-सा धर्म है?' हजरत ने कहा 'यह पितामह इब्राहीम का धर्म है।' चचा अबूतालिब ने हजरत के धर्म को तो नहीं अपनाया, किन्तु अपने जीवन भर उनकी रक्षा करते रहे। लगभग तीन वर्षों तक इसलाम के सदस्य गुप्त रूप से बढ़ते रहे तथा उनकी गुप्त नमाजें चलती रहीं।

8. इसलाम का खुला निमत्रंण

हजरत मुहम्मद ने सोचा कि अब अपनी बातें खुलकर कहनी हैं। अरब में यह प्रचलन था कि जब कोई संकट की घड़ी आती थी, तब एक व्यक्ति किसी ऊंची जगह पर खड़ा होकर 'या सबाहा' कहकर पुकारता था। हजरत मुहम्मद ने 'सफा' की पहाड़ी पर चढ़कर पुकारा 'या सबाहा'। यह आवाज सुनकर नगर से बहुत लोग आ गये और वे जानना चाहे कि बात क्या है। हजरत ने कहा—''मूर्तिपूजा छोड़ो, एक ईश्वर की उपासना करो। यदि इसे नहीं मानते हो तो आप लोगों पर भयंकर आफत आने वाली है।'' हजरत की इन बातों को सुनकर भीड़ क्रुद्ध हो गयी। उनके चचा 'अबूलहब' भी आ चुके थे। वे बहुत भड़के और उन्होंने कहा—''क्या तुमने हम लोगों को इसीलिए पुकारा है?'' सब लोग उलटा-पलटा कहते हुए लौट गये।

एक दिन हजरत ने मक्का के बहुत-से लोगों को भोजन के लिए निमंत्रित किया। भोजन के बाद हजरत ने सभा में अपने दीन के प्रचार की बात रखी। सभा में सन्नाटा छा गया। हजरत की बात मानने का मतलब यह था कि पूरे अरब के लोगों से शत्रुता मोल लेना। परन्तु इस सन्नाटा का भंग किया 'अली' ने। उन्होंने कहा—''मैं कमजोर तथा कम उम्र का हूं, परन्तु मैं आपका साथ दूंगा।'' सभा को अली पर आश्चर्य हुआ।

9. काबा में इसलाम की घोषणा

हजरत मुहम्मद के मार्ग में अब तक चालीस लोग सम्मिलित हो गये थे। उन्होंने सोचा कि अब काबा में इसकी घोषणा करनी है। हजरत ने जाकर

काबा में मूर्तिपूजा का विरोध और एकेश्वरवाद की घोषणा की। मूर्तिपूजक अरब वालों के लिए यह घोर अपमान था। वे भड़क उठे और चारों ओर से तलवार लेकर आप पर टूट पड़े। 'हारोस बिन अबी हाला' नाम के सज्जन आपको बचाने के लिए दौड़ पड़े, परन्तु उन पर चारों ओर से तलवारों के इतने वार पड़े कि वे वहीं शहीद हो गये। इसलाम-प्रचार में यह पहली कुर्बानी थी। हजरत मुहम्मद बच गये।

काबा अरब वालों का तीर्थस्थल था। मक्का की प्रतिष्ठा काबा के कारण थी। हजरत मुहम्मद का कुरैश-वंश इसका पुजारी तथा प्रबन्धक था। इसलिए कुरैश-वंश अरब में अपना धार्मिक-शासन रखता था। मूर्तिपूजा का विरोध करना कुरैश-वंश का अपमान करना था। कुरैश-वंश के अधिकतर लोगों में नैतिकता में शिथिलता आ गयी थी, परन्तु अपने मजहबी दबदबा से यह वंश पूजा जाता था। हजरत मुहम्मद मूर्तिपूजा का खंडन करते, ऐकेश्वरवाद का उपदेश करते और नैतिक बुराइयों का पर्दाफाश करके अच्छे आचरण से चलने की राय देते। इन सब बातों को लेकर हजरत के अपने कुरैश-वंश के लोग ही उनके शत्रु बन गये।

हर आंदोलन का पहले उपहास होता है। इसके बाद विरोध होता है। तत्पश्चात स्वीकार। इसलाम के लिए अब केवल उपहास नहीं, विरोध शुरू हो गया। पहले हजरत मुहम्मद को जादूगर, कवि, मजनू एवं पागल कहा गया। जनता को रोका गया कि मुहम्मद के पास मत जाओ। उनकी बातें मत सुनो।

हजरत मुहम्मद दृढ़ और लगनशील थे। हर कठिनाई पर उनके हृदय में एक नया प्रकाश होता और कुरान की आयतें बनती रहतीं और उन्हें आम लोगों को सुनाते रहते।

आम जनता में इसलाम के प्रति आकर्षण बढ़ता गया और उधर बड़े लोगों का विरोध बढ़ता गया। एक दिन चचा अबूतालिब ने हजरत से कहा कि भतीजे! तुम इतना बोझा मुझ पर न लादो कि मैं उसे उठा न सकूं। चारों तरफ से सबका विरोध कब तक सहूंगा। हजरत ने कहा कि हे चचा! यदि कोई हमारे हाथों पर चांद तथा सूरज जितना वजन रख दे, तो भी मैं अपना प्रचार न छोड़ूंगा। हजरत की यह दृढ़ता देखकर चचा ने उन्हें अभयदान दिया कि मैं तुम्हारी अपने जीवन भर रक्षा करूंगा।

हजरत की दृढ़ता देखकर कुरैश-वंश की तरफ से नम्रतापूर्वक उनका दिल भी टटोला गया कि यदि मुहम्मद मक्का का शासन चाहते, धन चाहते तथा सुन्दरी स्त्री चाहते हैं, तो उन्हें यह सब दिया जायेगा, परन्तु अपना यह झूठा प्रचार छोड़ दें। कुरैश की तरफ से यह प्रस्ताव लेकर 'उतबा बिन रबिआ'

हजरत के पास गया था। वह हजरत का दृढ़ विचार सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और कुरैश-वंश को समझाया, परन्तु उसकी बात वे लोग नहीं माने।

10. कठिन अग्नि परीक्षा

मक्का के कुछ बड़े घराने के लोग भी इसलाम स्वीकार कर लिये और यह प्रचार अब मक्का के बाहर भी फैलने लगा। जो इसलाम स्वीकार करते, वे इसे फैलाना चाहते और इसके विरोधी इसका दमन करना चाहते। इसलाम-विरोधी कुरैश लोग मुसलमानों को गरम रेत पर लिटाकर उनकी छाती पर बड़े-बड़े पत्थर रखते, गरम लोहे से दागते, पानी में डुबकियां दिलाते, जलते अंगार पर लेटाते, डंडे से पीटते। 'उमर' इसलाम स्वीकार करने के पूर्व अपनी दासी को, जिसने इसलाम स्वीकार कर लिया था, इतना मारते कि मारते-मारते स्वयं थककर बैठ जाते।

उन दिनों उन मुसलमानों का केवल यही दोष था कि वे कहते "हम एक ईश्वर को मानते हैं, उसके अलावा किसी दूसरे देव को नहीं मानते हैं।" यह सब देखकर जनता इसलाम की तरफ प्रभावित होती थी। पीड़ित मुसलमानों के लिए जनता के मन में सहानुभूति का उदय होना सहज बात थी। इसका फल यह हुआ कि अब तक मक्का नगर के हर घर का कोई-न-कोई मुसलमान बन गया था। नवोदित प्रचार होने से जो मुसलमान बनता था वह अन्य से प्राय: अधिक सदाचारी भी बन जाता था। इसका भी प्रभाव जनता पर पड़ता था।

11. कुछ मुसलमानों का बहिर्गमन

हजरत ने देखा कि मुसलमान बहुत सताये जा रहे हैं। अत: उन्होंने उनमें से कुछ को 'हबशा' नाम के देश में भेजने का इरादा किया। हबशा अफ्रीका का एक देश था जिसमें एक दयालु इसाई राजा राज्य करता था। हजरत ने सोचा कि जो लोग मक्का से चले जायेंगे वे यातना से छुट्टी पा जायेंगे और उस देश में इसलाम का प्रचार भी होगा। अत: ग्यारह पुरुष और चार स्त्रियां हबशा भेज दिये गये। कुरैश जब यह जाने तब उन्होंने उनका पीछा किये, परन्तु तब तक जल-जहाज छूट चुका था।

वे पन्द्रह सदस्य हबशा पहुंचकर आराम से रहने लगे। इधर कुरैश लोगों ने दो व्यक्तियों को हबशा के राजा के पास भेजकर उन्हें मक्का लौटाने के लिए प्रयत्न किया। इन दोनों व्यक्तियों ने हबशा के राजा से कहा कि हमारे देश अरब में एक नया मजहब चला है। उसके अपराध में ये व्यक्ति यहां भाग आये हैं। अत: इन्हें अरब वापस करने की कृपा करें। राजा ने उन मुसलमानों को बुलाकर उनसे उनके मजहब का बयान लिया तो उन्हें वह अच्छा लगा। अतएव राजा ने मुसलमानों को वापस करने से इंकार कर दिया। दूसरे दिन उन

दोनों ने एक दूसरा उपाय सोचा और उन्होंने जाकर राजा से कहा—''इन मुसलमानों से हजरत ईसा के विषय में पूछने की कृपा करें कि उनके विषय में इनकी क्या धारणा है।'' वस्तुत: हजरत मुहम्मद इसाइयों की टिप्पणी करते थे और स्वयं को खत्मा नबी बताकर संत ईसा के उपदेशों को भी परोक्ष रूप से निरस्त करते थे। राजा ने मुसलमानों को बुलाकर हजरत ईसा के विषय में पूछा, तो उनके प्रतिनिधि ने केवल इतना कहा कि हमारे नबी ने हमें बताया है कि हजरत ईसा ईश्वर के बन्दे तथा उनके रसूल थे। इतनी बात सुनकर राजा खुश हुआ, और मुसलमानों को अरब लौटाने की बात को कुरैश-दूतों से इंकार कर दिया। फिर पीछे उन पन्द्रह मुसलमानों से बढ़कर वहां तिरासी हो गये।

12. अबीतालिब की घाटी में तीन वर्ष

इसलाम-प्रचार से कुरैश-सरदार क्रुद्ध थे। उन सबने मिलकर यह प्रस्ताव पास किया कि मुहम्मद के पूरे परिवार 'बनी हाशिम' से अन्य कोई शादी, मुलाकात, व्यवहार तथा किसी प्रकार का लेन-देन न करे। जब तक मुहम्मद की हत्या करने के लिए वे हमें उन्हें सौंप नहीं देते हैं, तब तक उनका पूरा बहिष्कार रहेगा। यह प्रस्ताव लिखकर काबा में टांग दिया गया।

उक्त संकट में अबूतालिब ने अपने पूरे वंश 'बनी हाशिम' के साथ और हजरत मुहम्मद के सहित मक्का छोड़कर एक घाटी में तीन वर्ष बिताया जो उनकी पैतृक संपत्ति थी।

इन लोगों को जीवन-निर्वाह में इतना संकट पड़ा कि कई बार इन्हें पेड़ के पत्ते खाकर रहना पड़ा। यहां तक कि अनेक बार इन्हें सूखे चमड़े उबालकर और उसे खाकर पेट की आग शांत करनी पड़ी। उनके इस कष्ट से कुरैश के सरदार धीरे-धीरे पसीजने लगे और उन्होंने उन्हें घाटी से मक्का आकर रहने की अनुमति दी।

13. घोर संकट के दिन

हजरत मुहम्मद के रक्षक और उनके चचा अबूतालिब का देहांत हो गया और पत्नी खदीजा[1] का भी देहांत हो गया। इससे हजरत को काफी धक्का लगा।

परन्तु उन्हें अपने इसलाम-प्रचार में बल की कमी नहीं लगी। वे साहस के साथ उसके प्रचार में लगे रहे। एक बार हजरत ''ताइफा'' गये। वहां धनी लोग

---

1. **हजरत मुहम्मद की अन्य पत्नियां भी बतायी जाती हैं, जो देश, काल और परिस्थिति की उपज थीं। हजरत विलासी नहीं थे। उनके जीवन में विरोधाभास दिख सकता है, परन्तु वे तपस्वी थे। उनका जीवन सादा और सदाचारनिष्ठ था।**

रहते थे। उस नगर में हजरत ने उन्हें इसलाम में दीक्षित होने का निमंत्रण दिया और बताया कि मैं ईश्वर का दूत हूं। उन लोगों ने व्यंग्य किया—''क्या ईश्वर ने तुम्हीं को पाया था, उसे दूसरा दूत नहीं मिला।'' वहां के लोगों ने आपका अपमान किया और आपको परेशान करने के लिए गुंडों को लगा दिया। गुंडों ने आपको पत्थरों से मारा। आप घायल हो गये। शरीर का खून बह-बह कर आपके जूतों में भर गया। आपने जाकर एक बाग में विश्राम किया। हजरत इस प्रकार अकेले ही प्रचार में निकल जाते और प्राणों की बाजी लगा देते। जहां आप प्रचार में जाते, वहां आपके चचा 'अबूलहब' जो आपके घोर विरोधी थे, जाकर लोगों से कहते कि इसकी बात मत सुनो। यह धर्मभ्रष्ट है।

आपके ही वंश कुरैश के लोग आपको सताते रहते थे। जब हजरत नमाज पढ़ते समय सजदे में होते तो लोग आपके गले पर पशुओं की आंतें डाल देते और गले में कपड़े डालकर बेरहमी से खींचते और आपके गले में निशान पड़ जाते। बच्चों को पीछे लगा देते जो आपका उपहास करते, ताली पीटते और आपके भाषण में गड़बड़ी करते तथा कहते कि मुहम्मद मिथ्यावादी है।

14. चमत्कार एवं मेराज (ऊपर चढ़ना)

यह भी कहा गया है कि हजरत मुहम्मद ने लोगों को इसलाम में लाने के लिए चमत्कार भी दिखाये, जैसे रोगियों को अच्छा करना, थोड़ी वस्तुओं को बढ़ा देना, वर्षा करा देना। एक बार तो उन्होंने अपनी अंगुली के संकेत से एक क्षण के लिए चांद के दो टुकड़े कर दिये और कहा कि यह संसार क्षण में ही इसी तरह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा, कयामत (प्रलय) के दिन नजदीक हैं।

हजरत मुहम्मद के निधन के डेढ़ सौ वर्ष बाद पैदा हुए इमाम बुखारी तथा इमाम मुसलिम जो हदीसों के संपादकों में प्रमुख हैं, उन्होंने बयान किया है कि एक प्रात:काल हजरत मुहम्मद जब सोकर उठे तब उन्होंने बताया कि आज मुझे बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ है। ईश्वर के मुख्य फरिश्ता जिबराइल आये और वे मुझे काबे में ले गये। वहां उन्होंने मेरी छाती चीरी और उसे जमजम[1] के पानी से धोया। फिर उसे श्रद्धा और ज्ञान से भरकर बन्द कर दिया, इसके बाद एक खच्चर से भी छोटा सफेद रंग के पशु पर मुझे बैठाया। इस पशु का नाम 'बुराक' था। यह अत्यन्त तीव्रगामी था। इससे हम शीघ्र ही 'बैतुल मकदिस' पहुंच गये। वहां मसजिद में नमाज पढ़ी। जिबराइल ने मेरे सामने दो प्याले रखे, एक दूध का और दूसरा शराब का। मैंने दूध पी लिया और शराब लौटा दी। जिबराइल ने कहा कि आपने दूध पीकर मानवधर्म का पालन किया जो उसके प्रकृतिसंगत है।

---

1. **जमजम नाम का एक कुआं है जो काबे में स्थित है।**

पुनः बुराक पर बैठकर यात्रा शुरू हुई। हम पहले आकाश पर पहुंचे। जिबराइल ने द्वारपाल से फाटक खोलने की बात कही। द्वारपाल ने कहा कि तुम्हारे साथ कौन है? जिबराइल ने कहा 'मुहम्मद'। द्वारपाल ने पूछा—''क्या उन्हें बुलाया गया है?'' जिबराइल ने कहा—'हां।' यह सुनकर द्वारपाल ने फाटक खोल दिया और कहा कि ऐसे महापुरुष का आगमन धन्य है। जब हम भीतर गये, तब हजरत आदम से भेंट हुई। जिबराइल ने कहा कि तुम इनका नमस्कार करो। ये तुम्हारे पितामह तथा मानवमात्र के आदि पुरुष हैं। मैंने नमस्कार किया। हजरत आदम ने कहा—''स्वागतम् है नेक बेटे और नेक नबी।'' इसके बाद अन्य फाटकों पर भी द्वारपाल से इसी प्रकार बात करने पर फाटक खुलते रहे। दूसरे फाटक के भीतर 'याहया' और 'हजरत ईसा' से, तीसरे फाटक के भीतर 'यूसुफ' से, चौथे में 'हदरीस' से, पाचवें में 'हारून' से, छठें में 'हजरत मूसा' से मुलाकात हुई, सलाम एवं स्वागत-सत्कार हुए। इसके आगे सातवें आसमान पर सातवां फाटक खुला, जो 'सिदरे तुलमंतहा' है, अर्थात इससे आगे कोई नहीं जा सकता। वहां एक बेर के पेड़ पर असंख्य फरिश्ते जुगुनू की तरह चमक रहे थे।

यहां अल्लाहतआला के धाम में पहुंचकर हजरत मुहम्मद ने बहुत बातों का ज्ञान प्राप्त किया। ईश्वर से खुलकर वार्तालाप हुआ। अंततः ईश्वर ने मुसलमानों को रात-दिन के चौबीस घंटों में पचास बार नमाज पढ़ने का फर्ज बताया। जब हजरत मुहम्मद खुदा से आज्ञा पाकर वापस लौटे तो छठें द्वार पर पुनः हजरत मूसा मिले। उन्होंने हजरत मुहम्मद से पूछा कि अल्लाह से क्या प्रसाद मिला? हजरत मुहम्मद ने बताया कि मुसलमानों के लिए चौबीस घंटें में पचास बार नमाज पढ़ना। हजरत मूसा ने कहा—क्या यह भार मुसलमान ढो पायेंगे? जाकर ईश्वर से इसमें कमी कराओ। हजरत पुनः ईश्वर के पास गये। ईश्वर ने नमाजें कुछ कम कर दीं। किन्तु हजरत मूसा के पास पुनः पहुंचने पर उन्होंने हजरत मुहम्मद को पुनः ईश्वर के पास भेजा कि और कम कराओ। अंततः कई बार के वापस भेजने पर ईश्वर ने केवल पांच नमाजें रखीं और हजरत से कहा कि यदि मुसलमान पांच नमाजें पढ़ते हैं तो मैं उन्हें पचास का फल दूंगा।

इसके आगे ईश्वर ने दो बातें और कहीं कि मुसलमान अपने मजहब में दृढ़ रहें तथा जो मुहम्मद के अनुयायी शिर्क 'बहुदेववाद' से बचे रहेंगे, उनको मोक्ष-लाभ मिलेगा।

इसके बाद आपने वहां जन्नत और जहन्नुम अर्थात स्वर्ग और नरक के दृश्य देखे और यह देखा कि किस प्रकार जीव को मृत्यु के बाद अपने-अपने कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं।

इसके बाद हजरत मुहम्मद पुन: अंतरिक्ष-यात्रा करते हुए 'बैतुल मकदिस' लौट आये, और उन्होंने वहां देखा कि अल्लाह के नबी इकट्ठे हैं। हजरत मुहम्मद ने नमाज पढ़ी, और आपके पीछे सब ने नमाज पढ़ी। इसके बाद हजरत मुहम्मद जहां सोये थे, वहां से जग गये।

15. मक्का से मदीना हिजरत (स्थानांतरण)

इसलाम-दीन के पालन के लिए अपने देश को छोड़कर कहीं चले जाना 'हिजरत' कहलाता है। हजरत मुहम्मद का मक्का में रहना अब कठिन हो गया। उनकी हत्या करने के लिए मक्का वालों ने योजना बना ली थी। तब तक मदीने में इसलाम का प्रचार हो गया था। मक्का से मदीना उत्तर तरफ है। हजरत मुहम्मद ने एक रात 'अली' को बुलाकर कहा कि मैं आज घर से निकल जाऊंगा। घर में बहुत लोगों की थातियां रखी हैं। तुम उन लोगों को बुलाकर दे देना और आज रात तुम मेरे बिस्तर पर सो जाओ, जिससे नगर वाले समझें कि मुहम्मद घर में हैं।

हजरत मुहम्मद की हत्या करने के लिए नगर के लोग आकर उनका घर घेर लिये और वे तय किये कि जब मुहम्मद प्रात:काल घर से निकलें, तब उन्हें मार दिया जाये। अरबवालों में यह अच्छाई थी कि वे रात की बेसुधी अवस्था में किसी के घर में नहीं घुसते थे। जब रात ज्यादा बीती, तब हजरत मुहम्मद घेरा डालने वालों की नजरों से छुपकर निकल गये। शायद घेरा वाले सो गये थे। हजरत अबूबक्र के घर गये और उनके साथ मक्का से निकल गये।

मक्का से निकलकर एक गुफा में छिप गये जिसे 'ग़ारे सौर' अर्थात सौर की गुफा कहा जाता था। हजरत गुफा में तीन दिन छिपे रहे। कुछ भक्त उन्हें छिपकर खाना-पानी पहुंचाते रहे। उधर कुरैश के लोग हजरत की खोज करने लगे। सरदारों ने कहा कि मुहम्मद को जीवित या मृत अवस्था में जो ला दे उसे सौ ऊंट पुरस्कार में दिये जायेंगे। कुछ लोग एक दिन गुफा के पास आ गये, परन्तु गुफा के द्वार से ही वे इसलिए लौट गये कि द्वार पर मकड़ियों का जाला लगा था। अत: दुश्मनों ने समझा कि इसमें कोई जाकर छिपा होता तो मकड़ियों का जाला टूट जाता।

हजरत मुहम्मद चौथे दिन गुफा से निकलकर और ऊंटनी पर बैठकर मदीने के लिए चल दिये, साथ में एक दूसरी ऊंटनी पर अबूबक्र थे। हजरत ने करीब बारह वर्षों तक मक्का में इसलाम का प्रचार कर तेरहवें वर्ष 22 नवंबर सन् 622 ई० में मदीना पदार्पण किया। मदीना में जो मुसलमान हो चुके थे, उनके यहां आपका प्रवास हुआ। कुछ दिनों में हजरत की पत्नियां तथा परिवार के लोग भी मदीना चले गये। वहां एक मसजिद बनवायी गयी। उसके पास

हुजरों (कुटियों) का निर्माण हुआ। उन्हीं में सब रहने लगे। मक्का से बहुत मुसलमान मदीना पहुंच गये थे। मदीना के मुसलमानों ने उनको आश्रय दिया।

16. मदीना में प्रवास

मदीना के चारों तरफ यहूदी रहते थे। हजरत मुहम्मद ने उनसे एक समझौता किया कि आप सब हमारे ऊपर विपत्ति आने पर हमारा सहयोग करें। सहयोग न कर सकें तो तटस्थ रहें।

मदीना के मुसलमानों में ऐसे लोग भी काफी थे जिन्हें इसलाम से संतोष नहीं था, या उनका कपट से मुसलमान बनकर उसे तोड़ने का विचार था, या किसी मजबूरी से मुसलमान बन गये थे, ये लोग इसलाम-आन्दोलन के लिए विष थे।

17. बैतुल मकदिस से बदलकर काबा किबला

'बैतुल मकदिस' एक पवित्र उपासना गृह था। इसी तरफ मुख करके यहूदी नमाज पढ़ते थे तथा मुसलमान भी। हजरत मुहम्मद ने फरवरी 624 ई० में नमाज पढ़ते समय बैतुल मकदिस से मुख घुमाकर काबा की तरफ कर लिया। इसी दिन से मुसलमान काबा की तरफ मुखकर नमाज पढ़ने लगे। 'किबला' का अर्थ है 'जो सामने हो'। परन्तु परिभाषा में इसका अर्थ है जिधर मुख करके नमाज पढ़ी जाये।

18. मक्का के विरोधी उत्तेजित

मदीना नगर उस व्यापारिक-पथ पर विद्यमान था जो लाल सागर के तट के किनारे-किनारे होकर यमन से शाम की ओर जाता था। अरब का व्यापार शाम से चलता था। यदि मदीना में मुसलमान बलवान बन गये, तो मक्का वालों को बीच में लूट सकते थे, यह मक्का वालों को भय हो गया।

इस पथ पर चलने वाले काफिलों को मदीना के मुसलमान जा-जा कर रोब दिखाने लगे। इसमें उद्देश्य था उन्हें इसलाम के प्रभाव में लाना। इससे मक्का वाले और उत्तेजित हो गये। एक दिन हजरत का एक साथी जो बारह लोगों के साथ मक्का वालों की निगरानी के लिए भेजा गया था, नाम था 'अब्दुल्लाह बिन जहश' उसने मक्का के एक व्यापारी के माल को लूट लिया, एक को मार डाला तथा दो को बन्दी बनाकर हजरत के पास ले आया। हजरत को यह सब देख-सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कहा कि मैंने न किसी को लूटने के लिए कहा था और न मारने के लिए। मैंने तो केवल इसलिए भेजा था कि मक्का वालों के रवैये का पता लगाकर समाचार दो। तुमने बहुत गलत किया। उन्होंने लूट का माल नहीं स्वीकार किया। इस घटना में जो मक्का का

आदमी मारा गया था एक कुलीन-वंश का था। इससे मक्का वाले ज्यादा नाराज हो गये।

19. युद्ध

मक्का के कुछ व्यापारी पचास हजार असर्फियों के साथ शाम से मक्का लौटे थे। बीच में मदीना पड़ता ही था। मक्का वालों को उसके लुट जाने का अन्देशा हुआ, क्योंकि किसी ने जाकर मक्का में अफवाह फैला दिया कि मदीना वाले मक्का के व्यापारियों को लूट लेंगे। परन्तु मदीना वाले उन्हें लूटे नहीं किन्तु मक्का वाले करीब एक हजार की सेना लेकर मदीना की तरफ चल पड़े। मदीना में इसका पता लग गया। अत: इधर से भी हजरत ने अपनी तीन सौ की सेना लेकर सामना किया। मदीना के बाहर 'बदर' नाम की जगह में यह युद्ध हुआ। मक्का वाले हारकर भाग गये। इसमें मक्का के सत्तर तथा मदीना के चौदह लोग मारे गये। इसलाम का युद्ध परस्पर भाई-भतीजों का ही था।

मक्का वाले हारकर भाग गये, इसलिए मदीना वालों ने उनका माल भी लूटा। जो लोग शत्रुओं का पीछा करने तथा हजरत की रक्षा करने में थे उनके हाथ में कुछ नहीं आया। बाकी लोग शत्रुओं के छोड़े हुए माल को लूटकर प्रसन्न हुए। इन बातों को लेकर पीछे आपस में मनमुटाव चला। अतएव हजरत ने आज्ञा दी कि विजित का लूटा हुआ माल कोई अपना व्यक्तिगत न मानकर उसे जमआत में जमा करे।

इसके बाद मक्का तथा मदीना वालों के बीच मदीना के ही पास 'जोहद' नामक जगह में एक वर्ष बाद पुन: दूसरा युद्ध हुआ। इस बार भी मक्का वालों ने ही आक्रमण किया था। मक्का वाले इतने लड़ाकू थे कि उनका एक व्यक्ति भी यदि कभी मारा गया हो तो उसका बदला लेने के लिए वे वर्षों प्रतीक्षा करते थे। बदर के युद्ध में उनके सत्तर लोग मारे जा चुके थे। अत: उसका बदला लेने के लिए उन्होंने पुन: हमला बोला। इस युद्ध में मक्का से स्त्रियां भी लड़ने आयीं थीं। स्त्रियों ने पहले युद्ध भड़काने के लिए गीत गाये और इसके बाद युद्ध शुरू हुआ। अब की बार मदीना वालों की पराजय हुई। हजरत की सेना अब की एक हजार थी। परन्तु कुछ दूर चलकर 'अब्दुल इबने उबई' नाम का मुसलिम सरदार तीन सौ लोगों को लेकर युद्ध से अलग हो गया। यह हजरत के साथ खास समय पर धोखा हुआ। इस युद्ध में हजरत की सेना के सत्तर लोगों की मौत हुई। इससे मदीना में शोक की लहर छा गयी।

20. इसलाम में ब्याज लेना बन्द

उपर्युक्त युद्ध में भी पहले मुसलमानों की ही विजय हुई थी। परन्तु वे शत्रुदल को भागते देखकर उनका माल लूटने के चक्कर में पड़ गये और

इसका लाभ उठाकर मक्का वालों ने मुसलमानों को धरदबोचा। इससे हजरत को एक झटका लगा। उन्होंने सोचा कि धन का लोभ पतन का कारण है। वे पहले से देख रहे थे कि कैसे धनी लोग गरीब जनता को ब्याज के चक्कर में डालकर उन्हें चूसते हैं। अत: हजरत ने इसी समय घोषणा की कि मुसलमान कभी ब्याज नहीं लेगा।

21. पुनः युद्ध

इसके बाद युद्ध का क्रम चलता रहा। यहूदी विद्वानों और पीरों का मुसलमानों के लिए विरोध चला। हजरत ने फौज लेकर यहूदियों को उनके किले में ही घेर लिया। फिर समझौता हुआ और यहूदी अपना धन लादकर मदीना से चले गये।

कुछ यहूदी तथा मक्का के लोग मिलकर मदीना पर करीब दस हजार सेना लेकर हमला किये। इस युद्ध के लिए हजरत ने पहले से पांच गज गहरी खाई खोदवा रखी थी जिसे तीन हजार लोगों ने बीस दिन में तैयार किया था। इस युद्ध में विशेष मारकाट हुए बिना मक्का वाले भाग गये।

यहूदी लोग हजरत से एक समझौता किये थे। उन्होंने उसे तोड़ दिया और वे विरोधी पक्ष से जा मिले। इसलिए युद्ध के बाद हजरत ने उन्हें घेर लेने के लिए धावा बोल दिया और चार सौ ऐसे यहूदियों को मार डाला गया जो युद्ध करने लायक थे जिसमें एक औरत भी थी। उस औरत को इसलिए मारा गया कि उसने एक पत्थर गिराकर एक मुसलमान को मार दिया था।

22. काबा की तीर्थयात्रा

अरब वाले हर समय आपस में लड़ते रहते थे, परन्तु हज के समय लड़ाई बन्द कर देते थे जिससे लोग शांतिपूर्वक मक्का की यात्रा कर सकें। अत: हजरत मुहम्मद ने सोचा कि काबा की यात्रा मुसलमानों का फर्ज है। हमें यह करना चाहिए। मदीना के मुसलमान इस समाचार से खुश हो गये। हजरत के साथ चौदह सौ लोग मदीना से मक्का चले। सबने जाकर कुर्बानी, काबा की परिक्रमा आदि की। मक्का वालों को युद्ध की चढ़ाई का भ्रम हुआ था, परन्तु हजरत ने अपना दूत भेजकर बता दिया था कि हम केवल हज करने आये हैं। फिर हजरत मुहम्मद तथा मक्का के सरदारों से संधि हुई, जिससे आपस से आना-जाना तथा काबा की यात्रा सुलभ हुई।

23. हजरत का कुछ सम्राटों के नाम पत्र

हजरत मुहम्मद ने कुछ सम्राटों के नाम पत्र भेजकर उन्हें इसलाम स्वीकार करने का आग्रह किया जिनके नाम पत्र भेजा गया, वे हैं रोम, ईरान, मिश्र तथा हबशा के सम्राट। केवल एक पत्र का नमूना लें—

''आरम्भ करता हूं ईश्वर के नाम से जो अत्यन्त कृपाशील और दयावान है। (बिसमिल्ला हिर रहमानिर्रहीम) मुहम्मद की ओर से जो खुदा का बंदा और उसका रसूल है, हिरक्ल के नाम जो रोम का सम्राट है।

''जो कोई ईश्वरीय उपदेश का अनुसरण करे उसको ईश्वर की ओर से शांति प्राप्त हो। इसके पश्चात मैं तुम्हें इसलाम स्वीकार करने का निमन्त्रण देता हूं।

''अल्लाह तआला का आज्ञापालन तथा अधीनता स्वीकार कर लो तो तुम्हारा कल्याण होगा। अल्लाह तुम्हें दुगुना प्रतिफल देगा। परन्तु यदि तुमने अल्लाह के आज्ञा-पालन से मुंह मोड़ा तो तुम्हारे देश की जनता का पाप भी तुम्हारे ऊपर होगा। क्योंकि तुम्हारी अस्वीकृति के कारण उन्हें भी इसलाम का निमन्त्रण न पहुंच सकेगा।

''हे किताब वालो![1] आओ एक ऐसी बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे मध्य एक समान है।'' ये कि हम अल्लाह के अतिरिक्त किसी और की बंदगी (उपासना) न करें। किसी को उसका सहभागी न बनायें तथा हम कोई अल्लाह के अतिरिक्त किसी को अपना 'रब' न बनायें, परन्तु यदि तुम इस बात को न मानो और इससे मुंह मोड़ो तो हम साफ कह देते हैं तुम साक्षी रहो कि हम तो मुसलिम हैं। अर्थात केवल अल्लाह का आज्ञा-पालन तथा बंदगी (उपासना) करने वाले हैं।''[2]

लगभग इसी प्रकार चारों पत्र हैं।

24. सुरक्षा के लिए आक्रमण

अभी तक हजरत तब लड़ने के लिए तैयार होते थे जब कोई उनके काफिले पर हमला करता था, परन्तु अब स्थिति बदल गयी थी। मुसलमान बलवान हो गये थे। अतएव हजरत ने अब यह नीति बनायी कि अब शत्रु पर चढ़कर उसे परास्त किया जाये। मदीना के करीब तीन सौ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में खैबर एक जगह है। यहां यहूदियों का गढ़ था। ये लोग मक्का के कुरैश तथा मदीना के कपटी मुसलामनों को मुहम्मद के विरोध में उभाड़कर इसलाम-आंदोलन को एकदम नष्ट कर देना चाहते थे। हजरत मुहम्मद ने उनसे संधि चाही जिससे वे विरोधी काम छोड़ दें, परन्तु वे लोग इस राय को नहीं

---

1. **किताब वालों का अर्थ है जिनके पास ईश्वर की किताब आयी है। इसके संकेत हैं यहूदी तथा इसाई। इनके पास क्रमशः तौरेत तथा इंजील हजरत मूसा तथा हजरत ईसा द्वारा आये हैं जो ईश्वर के भेजे माने जाते हैं।**
2. **हजरत मुहम्मद : पवित्र जीवनी तथा संदेश, पृष्ठ 146-147।**

माने। अत: हजरत मुहम्मद अपनी सेना लेकर उन पर चढ़ गये और उन्होंने बीस दिन के घेराव तथा युद्ध में उन पर विजय प्राप्त कर ली। इसमें तिरानबे यहूदी तथा पंद्रह मुसलमान मारे गये।

25. मक्का पर आक्रमण

मक्का के काबा में तीन सौ साठ (360) मूर्तियां थीं और दीवारों पर चित्र खुदे हुए थे। हजरत मुहम्मद चाहते थे कि यह सब झंझट वहां से हट जाय और वहां शुद्ध ऐकेश्वरवाद के अनुसार उपासना हो। अत: हजरत मुहम्मद ने लगभग दस हजार की सेना लेकर सन् 630 ई० के मई महीने में मक्का की तरफ प्रस्थान किया। मक्का के पास उनकी सेना का पता लगाने के लिए मक्का का एक 'अबू सफियान' नाम का सरदार छिपकर आया। इसने हजरत की हत्या करने का भी कई बार प्रयास किया था। इसलाम का घोर विरोधी था। यह मुसलमानों द्वारा पकड़ लिया गया और हजरत मुहम्मद के पास उपस्थित किया गया। हजरत ने उसे क्षमा कर दी। इसका प्रभाव उसके ऊपर बहुत गहरा पड़ा और वह पुन: न लौटकर हजरत का शिष्य हो गया और उनकी सेना का सिपाही बन गया।

हजरत मुहम्मद ने अपने एक सरदार 'खालिद बिन वलीद' को आज्ञा दी कि तुम सेना की एक टुकड़ी लेकर मक्का में एक तरफ से प्रवेश करो, परन्तु किसी की हत्या नहीं करना। यदि तुम्हारे ऊपर कोई वार करे तो अपनी रक्षा करना। इधर हजरत ने स्वयं बड़ी सेना लेकर मक्का में दूसरी तरफ से प्रवेश किया। खालिद की सेना के विरुद्ध कुरैश-वंश के लोगों ने तीरों से वार किया, तो इनकी सेना ने भी उत्तर में वार किया। इसमें तीन मुसलमान तथा तेरह कुरैश मारे गये। जब हजरत को इसका पता चला, तो उन्होंने 'खालिद' से इस घटना के विषय में पूछा। जब यह पता चला कि विरोधियों ने पहले वार किया था, तब हजरत को संतोष हुआ। इधर हजरत मुहम्मद के सामने कोई विरोध करने नहीं आया। अत: वे मक्का में सरलता से प्रवेश कर गये और उनके तथा उनकी सेना के हाथों से किसी की हत्या नहीं हुई।

मक्का में प्रवेश कर हजरत ने तीन बातों की घोषणा की—1. जो व्यक्ति अपने घर में फाटक बन्द कर बैठ जायेगा वह सुरक्षित रहेगा, 2. जो व्यक्ति 'अबू सफियान' के घर में शरण लेगा, वह सुरक्षित रहेगा तथा 3. जो व्यक्ति काबा में शरण लेगा वह भी सुरक्षित रहेगा। परन्तु इस घोषणा से मक्का के करीब सात व्यक्तियों को अलग कर दिया गया था जो इसलाम के घोर शत्रु थे, क्योंकि इनकी हत्या कर देना उचित माना जा रहा था।

इस समय हजरत मुहम्मद की सेना की पताका सफेद रंग की थी और उसमें ध्वजा (डंडा) काले रंग की थी। आपने सिर पर मगफर (लोहे की

टोपी) पहन रखी थी और उस पर काली पगड़ी बांध रखी थी। आप ऊंट पर सवार थे तथा ईश्वर की प्रार्थना में आप विनीत भाव से इतना झुक-झुक जाते थे कि आपका मुख ऊंट की पीठ तक पहुंच जाता था।

आपने काबा में प्रवेश किया और सेना को आज्ञा दी कि सारी मूर्तियां यहां से निकालकर बाहर करो और दीवार पर बने देवी-देवताओं के सारे चित्र खुरचकर मिटा दो। यह सब किया गया और इसके बाद नमाज पढ़ी गयी।

इसके बाद हजरत ने एक ऐतिहासिक भाषण दिया जिसका कुछ अंश हदीस में अंकित है। उन्होंने उसमें एक ईश्वर ही उपासना बतायी और कहा कि उसके अलावा अन्य किसी की पूजा मत करो। कुल एवं वंश का गर्व न करो। सब इंसान बराबर हैं, इत्यादि।

इस अवसर पर कुरैश के वे लोग भी थे जो इसलाम के घोर शत्रु थे। उनमें वे लोग भी थे जिन्होंने अनेक मुसलमानों की हत्याएं की थीं और यहां तक कि हजरत मुहम्मद के चचा की हत्या करके उनके कलेजे को चबा गये थे। यह सब इसलिए किया गया था कि मुसलमान लोग देवी-देवताओं का खण्डन कर एक ईश्वर उपासना की पक्षधरता करते हैं।

हजरत मुहम्मद ने उन सब पर अपनी दृष्टि फेरी और पूछा कि तुम लोग जानते हो कि हम तुम्हारे साथ क्या व्यवहार करने वाले हैं? उन लोगों ने कहा—''आप एक सज्जन भाई हैं तथा सज्जन भाई के पुत्र हैं।'' यह सुनकर हजरत मुहम्मद ने उन सबसे कहा ''जाओ, अब तुम लोगों पर कोई आरोप नहीं है। तुम लोग स्वतन्त्र हो।'' इस प्रकार बिना खून-खराबा के मक्का पर हजरत की विजय हुई और घोर शत्रु भी पानी-पानी हो गये।

26. इसके बाद के युद्ध

इसके बाद भी कई युद्ध हुए। एक 'हुनैन' नामक जगह में युद्ध हुआ। यह एक घाटी है जो 'मक्का' और 'ताइफ' के बीच में पड़ती है। विरोध में 'हवाजिन' तथा 'सकीफ' नामक दो कबीले थे। इसमें विरोधियों के करीब सत्तर लोग मारे गये। मुसलमान कितने मारे गये, इसका पता नहीं है।

अरब के उत्तर रोम साम्राज्य था। इसमें ज्यादा इसाई थे। इसमें हजरत ने पन्द्रह मुसलमान भेजे थे। इसलाम का प्रचार करना उद्देश्य था। इसाइयों ने इन पन्द्रहों मुसलमानों की हत्या कर दी। इसके विरोध में हजरत ने सेना भेजकर वहां लड़ाई लड़ी थीं। रोम के राजा 'कैसर' से दो बार युद्ध करना पड़ा। मदीना के कुछ मुसलमान भीतर-भीतर इसलाम से विरुद्ध थे। उन्होंने अलग मसजिद बना ली थी। वे कैस के विरुद्ध हुए युद्ध में सम्मिलित भी नहीं हुए। युद्ध से लौटने के बाद हजरत ने विरोधी मुसलमानों की मसजिद गिरवा दी।

हजरत के मदीना आने के पहले ही मदीना में एक इसाई संन्यासी थे जिनका नाम 'अबू आमिर' था जिनकी तपस्या एवं सद्‌गुणों की मदीना में प्रसिद्धि थी, उन्होंने भी मुसलमानों का विरोध किया था।

27. मानने वालों को ही सुधार के लिए दण्ड देना उचित

रोम के युद्ध से लौटने के बाद हजरत ने मदीना के उन कपटी मुसलमानों से पूछा कि तुम लोग रोम के युद्ध में हमारा साथ क्यों नहीं दिये? उन लोगों ने इधर-उधर की बातें बना दीं। हजरत ने उनकी बातें ईश्वर पर छोड़ दीं और उन्हें कुछ नहीं कहा। परन्तु युद्ध में न जाने वालों में तीन ऐसे थे जो निष्कपट मुसलमान थे और हजरत के आज्ञाकारी थे। परन्तु उनसे तात्कालिक मानसिक दुर्बलता एवं आलस्य-वश भूल हो गयी थी और वे युद्ध में नहीं जा सके थे। इनके नाम थे 'काअब बिन मालिक', 'हलाल बिन उमैया' तथा 'मुरारा बिन रबी'।

हजरत के पूछने पर उक्त तीनों ने निष्कपट होकर अपनी गलती स्वीकार ली। अत: हजरत ने इन तीनों को पक्का बनाने के लिए इन्हें यह दण्ड दिया कि पूरा मुसलमान-समाज इनसे पचास दिनों तक दुआ-सलाम एवं बातचीत न करे और चालीस दिनों के बाद इससे इनकी बीबियों को भी अलग रहने का आदेश दे दिया जाये। उक्त तीनों ने यह दंड सहर्ष स्वीकार किया। फिर पचासवें दिन उन्हें क्षमा कर जमात में मिला लिया गया।

28. तात्कालिक इसलामी-नीतियों की घोषणा

हजरत मुहम्मद ने हजरत अली के द्वारा हाजियों के समूह में काबा में घोषणा करवायी—

1. इसलाम न स्वीकारने वाला स्वर्ग में प्रवेश नहीं पायेगा।

2. इस वर्ष के बाद कोई मूर्तिपूजक काबा के हज के लिए न आवे।

3. बैतुल्लाह की परिक्रमा कोई नंगा होकर नहीं कर सकेगा।

4. जो समझौते के तोड़ने वाले हैं और इसलाम के विरोध में षड्यंत्र रचते हैं उनके लिए आगे चार महीने का समय है। इस अवधि में वे चाहे मुसलमानों से लड़कर अपने भाग्य का फैसला कर लें, चाहे देश छोड़कर चले जायें और चाहे मुसलमान बन जायें।

5. काबा का प्रबन्ध और इसका संरक्षण पूर्णरूप से ऐकेश्वरवादियों के हाथों में रहेगा। मूर्तिपूजक का इसमें कोई हस्तक्षेप न होगा और अब काबा में कोई मूर्तिपूजक-रस्म अदा न होने पायेगी। बल्कि अब मूर्तिपूजक इस पवित्र घर

के निकट भी न आने पायेंगे।''[1]

29. अन्तिम हज यात्रा

हजरत मुहम्मद ने सन् 632 में हज करने का निश्चय कर उसकी घोषणा की। अबकी बार सारा अरब देश मक्का में उमड़ पड़ा। आप मदीना से चलकर 28 फरवरी 632 ई० को मक्का पहुंचे।

आपने पहले काबा की परिक्रमा की, फिर हजरत इब्राहीम के मुकाम पर नमाज पढ़ी। इसके बाद 'सुफा' की पहाड़ी पर गये। पहाड़ी से उतरकर 'मरवा' पर आये इसके बाद 'मिना' में ठहरे। इसके बाद 'अरफात' पहुंचे। वहां आपने ऐतिहासिक भाषण दिया। उन्होंने अपने भाषण में बताया कि अज्ञान का त्याग करो, विनम्र रहो, सब मुसलमानों को भाई समझो, गुलामों को अपनी तरह खिलाओ-पहनाओ, किसी का खून न करो, वैर-विरोध छोड़कर रहो, ब्याज कभी न लो, तुम्हारा अधिकार औरतों पर है तथा औरतों का अधिकार तुम पर है, कुरान को पढ़ो।

30. रुग्णावस्था और देहावसान

15 मई, 632 ई० को आपका स्वास्थ्य खराब हो गया। जब तक बल था आप मसजिद में जाकर नमाज पढ़ते रहे। एक दिन सिरदर्द होने पर भी सिर में रूमाल बांधकर मसजिद में नमाज पढ़ी तथा पढ़ायी। शरीर की हालत जब ज्यादा बिगड़ गयी तब मसजिद जाना छूट गया। एक दिन शरीर में अधिक कष्ट था। आप कभी मुख पर चादर डाल लेते और कभी हटा देते।

अन्त में हजरत मुहम्मद ने कहा—मैं सबसे अधिक आभारी अबूबक्र का हूं जिसने धन और मित्रता से मेरी रक्षा की।

यहूद और नसरा (इसाई) एवं पहले की जातियों ने अपने पैगम्बरों की कब्रों को पूज्य बना लिया है। उन्हें धिक्कार है। तुम लोग ऐसा नहीं करना।

उन्होंने अपनी फूफी सफिया तथा पुत्री फातिमा से कहा कि तुम लोग कुछ ऐसा कर लो जो खुदा के यहां काम आवे। मैं तुम लोगों को खुदा से नहीं बचा सकता।

हजरत ने अपनी एक पत्नी 'अयशा' के पास कुछ अशरफियां रखवा दी थीं। बीमारी की व्यग्रता की अवस्था में उन्होंने कहा कि ऐ अयशा, अशरफियां कहां हैं! क्या मुहम्मद ईश्वर से अविश्वासी की भांति मिलेगा। उन्हें लाकर ईश्वर के नाम पर दान कर दो।

---

1. **वही, पृष्ठ 182-183।**

बारम्बार मूर्च्छा आती रही और एक बार उन्होंने कहा—अब अन्य का नहीं, केवल उस महान मित्र की आवश्यकता है, और सोमवार दिन, 8 जून, 632 को उनका शरीरांत हो गया। यह समय हिजरी सन 11 का है।[1]

दूसरे दिन उसी हुजरे (कुटी) में आपका दफन किया गया जहां आपका देहावसान हुआ था। यह घटना मदीना में ही घटी। कहा जाता है कि आज उनकी कब्र का पता नहीं चलता। वह खो गयी है।

31. उपसंहार

हजरत मुहम्मद एक दृढ़ निश्चयी लौह पुरुष थे। उन्होंने तात्कालिक अरब, मक्का तथा काबा की अव्यवस्था देखकर उनके सुधार के लिए बीड़ा उठाया और अपना पूरा जीवन उसमें समर्पित कर दिया।

उन्होंने अपनी ओर से लड़ाई लड़ने की कभी नहीं सोची। वे इंसान का खून बहाना पाप समझते थे, परन्तु जाति-भाइयों एवं अरबवालों ने उन्हें चैन से बैठने नहीं दिया। उन पर बराबर हमला किया गया, इसलिए वे अपनी तथा अपने समाज की रक्षा करने के लिए विवश हुए और उन्होंने अस्त्र-शस्त्र उठाये। परन्तु उन्होंने जीवन में जितनी लड़ाइयां लड़ीं सब मिलाकर उनमें कुल एक हजार से भी कम लोग मारे गये।

जहां तक पैगम्बरवाद तथा चमत्कार की बातें हैं, पीछे वालों ने भावावेश में कितना लिखा-पढ़ा, कुछ कहा नहीं जा सकता। प्राय: मजहबी लोग अपने मजहब को फैलाने के लिए ऐसी अलीक कल्पनाएं करते हैं। खास बात है उनके ज्योतित व्यक्तित्व एवं कृतित्व से रचनात्मक दिशा में प्रेरणा लेना। हजरत मुहम्मद जैसे महापुरुष का यश:शरीर संसार में अमर रहता है।

---

1. **हजरत मुहम्मद जब मक्का से मदीना हिजरत कर गये तब से हिजरी सन चला। हिजरत का अर्थ है स्वदेश त्याग या धर्म के नाम पर अपना देश छोड़कर कहीं अलग चले जाना।**

13

स्वामी शंकराचार्य

स्वामी शंकराचार्य एक अद्‌भुत संन्यासी थे। उन्होंने जैसे ध्यान की गहराई में डूबकर समाधि-लाभ लिया, वैसे लोकमंगल के जुझारू कर्म किये। वे एक साथ पंडित, ज्ञानी, वाक-पटु, शास्त्रार्थ-महारथी, कवि, कर्मशील, योगी और निवृत्ति-परायण थे। इतनी बहुमुखी प्रतिभा लेकर कभी-कभी कोई-कोई जन्म लेता है। स्वामी शंकर की विशालता को समझकर कौन उनके सामने नतमस्तक नहीं होगा!

1. जन्म और जीवन

कहा जाता है दक्षिण भारत केरल के चिदंबरम् में एक नंबूदरी ब्राह्मण-दंपती रहते थे। ब्राह्मणदेव समय से संन्यासी होकर बाहर चले गये। उनकी पत्नी बहुत दिनों तक चिदंबरम् के अधिष्ठाता देवता की आराधना करती रहीं, फिर देवता ने कृपाकर रहस्यात्मक तथा चमत्कारी ढंग से ब्राह्मणी को गर्भवती कर दिया। इस प्रकार जो बच्चा जन्म लिया वह शंकर है।[1]

दूसरा मत है कि एक विधवा ब्राह्मणी तपस्विनी से बच्चा जन्म लिया, वह शंकर हैं।[2] शंकर का जन्म 788 ई० माना जाता है।

जो हो, इतना साफ है कि स्वामी शंकर ने केरल प्रदेश के एक ब्राह्मणी माता से जन्म लिया। महापुरुष का महत्त्व इसमें नहीं है कि उन्होंने किस माता-पिता एवं किस वर्ण-जाति से तथा किस देश-प्रदेश में जन्म लिया; अपितु उनका महत्त्व उनके आत्म तथा लोक-मंगलकारी कामों से है।

शंकर की प्रतिभा बचपन से ही आलोक बिखेरने लगी थी। उन्होंने अपनी थोड़ी उम्र में ही व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर लिया और वेद-शास्त्र का स्वाध्याय कर डाला।

---

1. **आनन्दगिरि के 'शंकरविजय' के आधार पर लिखित सी० एन० कृष्णा स्वामी अय्यर, एम० ए० एल० टी० असिसटेंट नेटिव कालेज कोइंबटोर के द्वारा 'लाइफ एंड टाइम ऑफ शंकर' पृष्ठ 12।**
2. **नारायणाचार्य कृत 'मणिमंजरी' के आधार पर सी० एन० कृष्णा स्वामी अय्यर...। विद्यावारिधि पं० रजनीकांत शास्त्री कृत 'मानस-मीमांसा', पृष्ठ 13-14 से उद्‌धृत।**

शंकर व्यवहारकुशल और सहृदय भी थे। एक बार जबकि वे छात्र थे भिक्षा के लिए गये और उन्होंने एक ब्राह्मण के द्वार पर 'भिक्षां देहि' कहकर पुकारा। वह ब्राह्मण का घर बड़ा गरीब था। उस दिन घर में कुछ नहीं था। ब्राह्मणी घर में से आंसू बहाते हुए निकली तथा उसने शंकर के हाथ में एक आंवला रख दिया। शंकर को उस गरीब परिवार पर बड़ी दया आयी और पास के धनी घर के दरवाजे पर गये और वहां भी उन्होंने भिक्षा मांगी 'भिक्षां देहि'। जब घर में से सेठानी भिक्षा लेकर निकली और शंकर के पात्र में डालना चाही, तुरन्त उन्होंने अपना हाथ खींच लिया और कहा—आपकी भिक्षा त्याज्य है; क्योंकि आपके घर के पास में ही ऐसा गरीब परिवार रहता है जिसके खाने के लिए अन्न तक नहीं है। कहा जाता है उस सेठ ने उस गरीब ब्राह्मण का घर सोने के आंवलों से भरा दिया। सार इतना ही है कि सेठ ने उस ब्राह्मण-परिवार को धन की सहायता की।

गुरुकुल से जब शंकर घर लौटे तब माता चाहती थीं कि शंकर का शीघ्रतापूर्वक विवाह कर दिया जाये, नहीं तो यह साधु न हो जाय। परन्तु शंकर के मन में तो कुछ और था। वे संन्यासी होना चाहते थे। इसके लिए माता आज्ञा देने वाली नहीं थीं।

कहा जाता है शंकर ने एक योजना बनायी। मां-बेटे नदी में स्नान करने गये। शंकर ने कहा—मां, तुम नहा लो, तब मैं स्नान करूं। मां के स्नान कर लेने के बाद जब शंकर पानी में गये तब जोर से रुदन करने लगे 'मां, मां, मुझे मगर ने पकड़ लिया।' मां व्याकुल हो गयीं। शंकर ने कहा—'मां, यदि आप मुझे संन्यासी होने की आज्ञा दे दें, तो यह छोड़ देगा, अन्यथा नहीं छोड़ेगा।' मर जाने की अपेक्षा संन्यासी होना अच्छा था ही। मां ने कहा—'बेटा, मैं आज्ञा देती हूं कि तुम संन्यासी हो जाओ, किन्तु मगर से छूट जाओ।' पीछे से माता ने कहा, हां, एक शर्त है, तुम मेरी मृत्यु के समय मेरे पास आ जाना। शंकर ने स्वीकार कर लिया।

2. गृहत्याग तथा गुरुशरण

शंकर माता का चरण-स्पर्श कर गुरु की खोज में चल पड़े। वे पूर्ण युवक भी न हुए थे; किन्तु वे अनेक जन्मों के शुद्ध संस्कार, पौरुष, अपार साहस, वीरता और कार्य करने की क्षमता लेकर प्रकट हुए थे। वे वनों, गिरिगुहों तथा संतमंडलियों में खोज करते हुए नर्मदा नदी के तट पर अमरकंटक में पहुंचे और वहां उनको योग्य गुरु गोविन्दपाद जी महाराज मिल गये। गुरु ने भी जब शिष्य शंकर को देखा तो समझ गये कि दिव्य संस्कारी पुरुष है और यह संसार में कुछ कर दिखायेगा। गुरु ने शंकर को दीक्षा दी और असली संन्यासी शंकर

को ऊपर से भी संन्यासी का वेष दे दिया। शंकर ने गुरु से विधिवत शास्त्रों का अध्ययन किया।

कहा जाता है कि शंकर के गुरु गोविन्दपाद के गुरु गौड़पाद थे। किन्तु गौड़पाद का समय विद्वान लोग ईसा की पांचवीं शताब्दी या छठी शताब्दी का आरम्भ मानते हैं। जो लोग मानते हैं कि गोविन्दपाद के गुरु गौड़पाद थे वे कहते हैं कि गौड़पाद बदरिकाश्रम में रहते थे। अतएव गोविन्दपाद शंकर की विशाल प्रतिभा देखकर उन्हें अपने साथ अमरकंटक से बदरिकाश्रम ले गये। बदरिकाश्रम में गौड़पाद का साहचर्य पाकर शंकर की विद्वता और खिल गयी। फिर तो गौड़पाद अपने गुरु शुकदेव तथा दादागुरु वेदव्यास के दर्शन कराने के लिए शंकर को कैलाश में ले गये। परन्तु ये सारी बातें भावुकता मात्र हैं।

यह सच है कि स्वामी शंकराचार्य के सिद्धांत पर गौड़पाद का गहरा प्रभाव है, परन्तु यह तो उनसे मिले बिना उनके ग्रन्थों से सहज ही लिया जा सका होगा। स्वामी शंकराचार्य के सिद्धान्त को जानने वाला यह सहज समझ सकता है कि उनके सिद्धांत का उपादान गौड़पाद का 'मांडूक्यकारिका' ग्रंथ है।

3. माता का अंत्येष्टि-संस्कार

स्वामी शंकराचार्य को संदेश मिला कि उनकी माता अस्वस्थ हैं। वे लम्बी यात्रा करके केरल प्रदेश जन्म-स्थान पर पहुंचे। उन्होंने उनकी सेवा की।

उन्होंने माता को अद्वैततत्त्वबोध देने के लिए एक 'तत्त्वबोध' नाम की सरल पुस्तक लिखी; माता ने कितना समझा कितना नहीं, परन्तु उन्होंने कहा कि मुझे कृष्ण के विषय में कुछ सुनाओ। तब शंकर ने कृष्णाष्टक नामक छन्द रचकर उनको सुनाया। सच है, साधारण कोटि के लोगों की केवल ज्ञान से तृप्ति नहीं होती, उन्हें भक्तिरस की भी आवश्यकता होती है।

माता का शरीर छूट गया। शंकर ने माता का दाह-संस्कार करना चाहा। समाज ने विरोध किया, क्योंकि संन्यासी को किसी के दाह-संस्कार करने का विधान शास्त्र में नहीं है। परन्तु शंकर ने नहीं माना। उन्होंने घर के आंगन में ही लकड़ी की चिता बनायी और अपने हाथों माता के शव का दाह-संस्कार किया। यह ठीक है कि यह कार्य संन्यास-धर्म के अनुकूल नहीं है; परन्तु शंकर स्वामी जैसा संन्यासी कहां मिलेगा! यही तो कहीं-कहीं नियम का अपवाद होता है और वह महत्तम पुरुषों में।

उधर अमरकंटक में गुरु गोविन्दपाद अस्वस्थ चल रहे थे, वृद्ध थे ही। स्वामी शंकर ने आकर उनकी भी सेवा की। थोड़े ही दिनों में गोविंदपाद का शरीरांत हो गया।

4. प्रचार कार्य

गुरु के शरीरांत होने पर स्वामी शंकराचार्य काशी आये और वहां वे कुछ दिनों निवास किये। तत्पश्चात वे अपना प्रचार अभियान आरम्भ किये।

यह वह समय था जब बौद्धमतावलम्बियों की अस्ताचल की ओर गति होते हुए भी उनका समाज के बहुत बड़े भाग पर बोलबाला था। दूसरी ओर वैदिक कर्मकांडियों का जोर था, तो किसी ओर तांत्रिक एवं कापालिकों का प्राबल्य था।

शंकर ने सोचा कि पहले कर्मकांडी हिन्दू अपने केवल 'स्वाहा, स्वाहा' के घरौंदे से निकलकर उदार तथा ज्ञानी हों; अत: उन्होंने पहले कर्मकांडियों को समझाकर, शास्त्रार्थ में परास्तकर और अपने प्रेम तथा प्रतिभा के बल से उन्हें अपनी ओर लाकर अपना दल मजबूत करने का प्रयास किया।

उस काल के वेद तथा कर्मकांड के प्रकांड पंडित कुमारिलभट्ट थे। उन्होंने अपनी थोड़ी उम्र में ही वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बीड़ा उठाया था और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक यात्रा करके वैदिक कर्मकांड की स्थापना की थी। उन्होंने पहले बौद्ध गुरुओं से बौद्धधर्म की शिक्षा ली और उनके वेष में छिपकर उनके सारे रहस्यों को जाना और फिर पीछे बौद्धों का खंडन करके उनको परास्त करना तथा कर्मकांड का विस्तार करना अपना कर्तव्य माना। किन्तु बौद्ध गुरुओं के प्रति ऐसा छलयुक्त व्यवहार करने से कुमारिल को सदा मन में संताप होता रहा और अंतत: वे अपने इस घिनौने कार्य से अनुतापित होकर उसके प्रायश्चित में आग में कूदकर जल मरे। उन्होंने यह आत्मदाह त्रिवेणीसंगम प्रयाग पर किया था।

कुमारिलभट्ट के कई अच्छे पंडित शिष्य देश में बिखरे थे। उनमें एक थे भास्कराचार्य जो प्रयाग के पास प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) में उस समय विराज रहे थे। स्वामी शंकर ने उनके पास आकर उन्हें समझा-बुझाकर अपने मत में दीक्षित किया और इस प्रकार उनको एक धुरंधर शिष्य मिला जो वेदांत प्रचार का एक महान नेता हुआ।

कुमारिलभट्ट के दूसरे महान पंडित शिष्य मंडनमिश्र थे। ये मिथिला में रहते थे। शंकर इनके पास भी गये और दोनों में कई दिनों तक शास्त्रार्थ हुआ तथा शंकर स्वामी के आगे मंडनमिश्र को चुप हो जाना पड़ा। उसके पश्चात मिश्र जी की पत्नी 'भारती' ने शंकर स्वामी से शास्त्रार्थ किया। भारती के सारे तर्कों का उत्तर तो शंकर स्वामी ने दे दिये; परन्तु जब उसने काम-शास्त्र सम्बन्धी प्रश्न किये, तब बाल ब्रह्मचारी शंकर उत्तर न दे सके तथा 'भारती' से कुछ दिन का अवसर मांगकर एक मृत राजा के शरीर में प्रवेश कर उसकी अनेक रानियों में कुछ दिनों तक रहकर तथा गृहस्थी जीवन का अनुभव करके

तत्पश्चात भारती का उत्तर दिये और भारती को भी परास्त कर दिये तथा इस प्रकार भारती और मंडनमिश्र दोनों स्वामी शंकर के शिष्य हो गये तथा मंडनमिश्र संन्यासी हुए और उनका नाम पड़ा सुरेश्वराचार्य। इस प्रकार स्वामी जी को एक दूसरा महान धर्म प्रचारक मिल गया।

यहां स्वामी शंकराचार्य का भारती को परास्त करने के लिए जो गृहस्थी जीवन का अनुभव करने की बात आयी है, ऊटपटांग लगती है। अद्वैत-ज्ञान कराने के लिए कामकला की चर्चा की कोई आवश्यकता ही नहीं है। और यदि भारती न भी परास्त होती तो क्या बिगड़ जाता! वस्तुत: यह स्वामी शंकराचार्य पर परकाया-प्रवेश और कामभोग का आरोप अनुगामियों की मिथ्या कल्पना है। अखंड वैराग्यवान स्वामी शंकराचार्य स्त्री-संपर्क कर ही नहीं सकते। अद्वैतवेदान्त में प्राय: अंतत: भोग-योग में अन्तर नहीं मानते, इस कथा का यही मूल हो सकता है या 'परकाया प्रवेश' जैसी मिथ्या धारणा का प्रचार करने के लिए यह कथा गढ़ी गयी है।

स्वामी शंकराचार्य की शिष्य मंडली विशाल हो गयी थी। वे पूरे भारत में घूम-घूमकर अद्वैतवेदान्त का प्रचार करने लगे। उनके ख्याल से एक आत्मा के अलावा कुछ नहीं था; परन्तु उन्होंने हिन्दू समाज में फैले नाना देवी-देवताओं का खंडन नहीं किया और सबको समेटकर हिन्दू समाज का एक सुन्दर संघटन करना चाहा। कहा जाता है उन्होंने ही 'पंचायतन' की उपासना प्रणाली चलायी। जैसे 'शिवपंचायतन' एवं 'रामपंचायतन' आदि। शंकराचार्य का ही असर था जो हिन्दुओं ने जगन्नाथ के बौद्ध मन्दिर को अपना बना लिया; किन्तु बौद्ध के छुआछूत-विरोधी विचारों को न हटा सके और आज भी जगन्नाथ में सबका छुआ सब खाते हैं।

स्वामी जी देश में जगह-जगह मठ स्थापित करने लगे जिससे वहां शिक्षा पाकर युवक संन्यासी देश में प्रचार कर सकें। उन्होंने पहले दक्षिण भारत कांची में मठ स्थापित किया। पीछे चलकर शृंगेरी मठ में वह काम होने लगा। उसके प्रथम अधीश्वर सुरेश्वराचार्य (मंडनमिश्र) हुए। फिर स्वामी जी जगन्नाथ पहुंचे और वहां गोवर्धन मठ की स्थापना की। फिर काशी आदि घूमते हुए पश्चिमी भारत में पहुंचे और द्वारकापुरी में उन्होंने शारदापीठ नामक मठ स्थापित किया। वहां से पंजाब होते हुए बौद्धों के गढ़ तक्षशिला पहुंचे, वहां बौद्धाचार्यों से शास्त्रार्थ हुआ।

वहीं से वे महर्षि कश्यप की भूमि कश्मीर गये। वहां शारदा के पुजारियों से शास्त्रार्थ हुआ। तत्पश्चात पूर्व प्राग्ज्योतिष प्रान्त की ओर गये जहां तांत्रिक वाममार्गी अपने दुराचरण को धर्म मानकर उसी में व्यस्त थे। वे शंकर स्वामी के शास्त्रार्थ को मानने वाले नहीं थे। अतएव स्वामी जी ने अपना प्रचार वहां

जनसाधारण में किया, किन्तु वामाचार्यों की भ्रांतियों का भंडाफोड़ होने से वे स्वामी जी पर क्रुद्ध हो गये। फलतः स्वामी जी की मृत्यु के लिए कापालिकों द्वारा षड्यंत्र रचे जाने लगे। अभिनव गुप्त बहुत दिनों तक स्वामी जी की हत्या करने के फेर में पड़ा रहा। कहा जाता है कि किसी विरोधी के द्वारा विष देने से स्वामी जी के शरीर में रोग हो गया और कुछ लोगों का मत है कि स्वाभाविक ही उन्हें भगंदर का भयंकर रोग हो गया था।

स्वामी जी रुग्णावस्था में बदरिकाश्रम चले गये। वहां कुछ दिन निवास किये। उसके पश्चात वे केदारनाथ की यात्रा का विचार किये। वे उस तरफ गये तो सदा के लिए चले गये और उन्होंने अपनी 32 वर्ष की थोड़ी आयु में सन् 820 ई० में शरीर का त्याग कर दिया।

स्वामी शंकराचार्य की पूरी आयु 32 वर्ष की थी; परन्तु उन्होंने उतने ही थोड़े दिनों में जितना काम कर दिखाया, बहुत विशाल था। उन्होंने दस मठ स्थापित किये जिनमें चार आज भी भारत के चारों कोनों पर विराजमान हैं। उन्होंने प्रस्थानत्रयी—मुख्य उपनिषदें, गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर बृहत भाष्य लिखा। अनेक मौलिक पुस्तकें रचीं। रेल, मोटर आदि यातायात साधन के बिना आज से 12 सौ वर्ष पूर्व पूरे भारत का भ्रमण कर प्रचार किया। त्यागी शिष्य मंडली का संघटन कर उनके साथ प्रसन्नतापूर्ण गुरु-शिष्य का सम्बन्ध निभाया। निश्चित है स्वामी शंकराचार्य अनेक जन्मों के दिव्य संस्कारी और वर्तमान के महान कर्मठ पुरुष थे। जैसे उनमें संगठन की शक्ति महान थी वैसे उनकी एक-एक वाणी से वैराग्य तथा आत्मज्ञान टपकता है। वेदांत-परम्परा को जिस तरह उन्होंने प्रभावित किया, बेजोड़ है।

14

सद्‌गुरु कबीर साहेब

'कबीर' शब्द का भाषागत अर्थ जैसे महान है, वैसे 'संत कबीर साहेब' नाम एक उच्चतम संत, निर्भीक, प्रातिभ एवं विशाल व्यक्तित्व का द्योतक है। जिसका कोई संप्रदाय नहीं, सांप्रदायिक रूढ़ ईश्वर नहीं, कोई ईश्वरीय किताब नहीं, कोई अवतार, पैगम्बर एवं ईश्वर-पुत्र नहीं, जिसने स्वयं भी अवतार, पैगम्बर एवं ईश्वर-पुत्र बनने का दंभ नहीं किया, जिसने अपने आप को किसी जाति, वर्ण एवं मजहब से नहीं जोड़ा, ऐसा भीतर-बाहर सम्पूर्ण निष्पक्ष व्यक्तित्व लेकर जिस प्रकार संत कबीर साहेब आये, अपने आप में अनोखा है।

जो किसी एक का नहीं होता, वह सबका होता है। कबीर साहेब किसी में चिपके नहीं थे, इसलिए वे सबकी कसर-खोट को निर्भीकतापूर्वक कह सके और सबके लिए प्रेम की गंगा बहा सके। यहां हम उसी महापुरुष के विषय में कुछ निवेदन करेंगे।

1. जन्मकाल और माता-पिता

विक्रम संवत् 1456, ज्येष्ठ पूर्णिमा को उनका जन्मदिन माना जाता है। नीरू और नीमा नाम के जोलाहा दंपति जो काशी में रहते थे लहरतारा नाम के तालाब पर संयोगवश पहुंच गये। उन्होंने एक नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनी। निकट पहुंचकर उन्होंने बच्चे को उठा लिया और पाला-पोषा। यह बच्चा ही आगे चलकर संत एवं सद्‌गुरु कबीर नाम से प्रख्यात हुआ। यह कथा बहुत प्रसिद्ध है।

जिस बच्चे के जन्मदाता माता-पिता का पता न हो, और वह आगे चलकर महान हो जाय तो उसके लिए श्रद्धालु लोग चमत्कारी प्रसंग जोड़ते हैं, क्योंकि माता-पिता का पता न होना लोक-मर्यादा के विरुद्ध माना जाता है। इस क्रम में श्रद्धेया मां सीता, आदि शंकराचार्य, संत ईसा जैसे अनेक नाम लिये जा सकते हैं। मां सीता को जनक जी ने खेत में हल चलाते समय नवजात शिशु के रूप में पाया था,[1] तो पीछे यह प्रसिद्धि की गयी कि सीताजी जमीन से पैदा हुईं

---

1. **वाल्मीकीय रामायण, 1/66/13-14; 2/118/28-31; तथा 5/16/16।**

और अन्ततः जमीन में समा गईं। एक ब्राह्मणी ने अपने बहुतकाल के विधवापने के बीच में एक पुत्र को जन्म दिया जो संसार में शंकराचार्य के नाम से एक विद्वान एवं दिव्य संन्यासी के रूप में प्रख्यात हुआ; अतएव शिवजी के आशीर्वाद से इसका जन्म मान लिया गया।[1] कुमारी मरियम ने संत ईसा को अपने विवाह पूर्व ही गर्भ में धारण किया, तो प्रसिद्धि की गयी कि ईश्वर की कृपा से यह गर्भधारण हुआ। अतएव ईसा ईश्वर के पुत्र थे।

ऊपर निवेदन किया गया है कि कबीर साहेब भी नवजात शिशु के रूप में लहरतारा में पाये गये, तो इसके समाधान के लिए भक्तों ने अनेक कहानियां गढ़ीं। किसी ने लिखा कि स्वामी रामानन्द ने एक विधवा ब्राह्मणी अथवा कुमारी कन्या को अंजान में 'पुत्रवती भव' कहकर आशीर्वाद दे दिया था; उसको गर्भ रह गया। बच्चा पैदा होने पर वह लोकलाज-वश लहरतारा तालाब पर छोड़ गयी। किसी ने लिखा कि आकाश से लहरतारा-तालाब पर एक ज्योति उतरी और वही शिशु बनकर कमलफूल पर खेलने लगी। वही कबीर साहेब हैं। पौराणिक कबीरपंथी भक्तों में इस दूसरी बात की ही अधिक प्रसिद्धि है।

कोई भावुकता में कुछ भी कहे; बिना माता-पिता के किसी का जन्म नहीं होता। रामचरित मानस में जनकपुर की एक मनोरंजक कथा है। भले ही वह प्रक्षिप्त हो, परन्तु सत्य का मार्मिक उद्‌घाटन करने वाली है।

श्रीराम आदि चारों भाइयों का विवाह हो चुका है। बरात जनकपुर में विद्यमान है। राजभवन की नारियों ने श्रीराम चारों भाइयों को रंगमहल में बुलाकर उनका स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद परस्पर हंसी-विनोद आरम्भ हो गया। एक सखी श्रीराम आदि चारों भाइयों की पैदाइश पर व्यंग्य करते हुए कहती है ''अयोध्या की नारियां अत्यन्त उदार एवं चमत्कारी काम करने वाली हैं। वे तो खीर खाकर बच्चा पैदा कर देती हैं। उन्हें गर्भधारण करने के लिए पति की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।''[2]

उक्त बातें सुनकर श्रीराम ने मुस्कराते हुए कहा ''हे प्यारी, अपनी चाल छिपाकर केवल दूसरे की मार्मिक बातें कह रही हो। कोई भी व्यक्ति बिना माता-पिता के नहीं पैदा होता; क्योंकि यह प्रकृति का नियम है। हां, आपके

---

1. **मणिमंजरी, लेखक पं० नारायणाचार्य। सी० एन० कृष्णा स्वामी अय्यर (असिसटेंट नेटिव कालेज कोइंबटोर) कृत लाइफ एण्ड टाइम ऑफ शंकर। मानसमीमांसा, पृ० 13-14।**

2. **अति उदार करतूतिदार सब, अवधपुरी की बामा।**
   खीर खाय पैदा सुत करतीं, पतिकर कछु नहिं कामा॥

यहां सुनता हूं कि जनकपुर में तो सब पृथ्वी फोड़कर पैदा होते हैं। हमारी अयोध्या में ऐसी पैदाइश की रीति नहीं है।''[1]

2. जाति की जड़ता

नीरू-नीमा दंपति जोलाहे मुसलमान थे। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने विस्तृत शोध से यह निष्कर्ष निकाला है कि वे एक-दो पीढ़ी पूर्व में ही हिन्दू से मुसलमान बने थे। इसलिए इस परिवार में हिन्दू-संस्कार भी विद्यमान थे। हजारों वर्षों से भारतीय परम्परा में यह बीमारी घुस गयी है कि तथाकथित अमुक जाति का आदमी बड़ा होता है तथा अमुक जाति का छोटा। इस धारणा ने मनुष्यों के मन में या तो मिथ्या अहंकार भर दिया है या तो हीन-भावना। परन्तु यह मानसिक कोढ़ भारतीयों एवं आर्यों में पुराकाल में नहीं था।

'सत्यकाम' के पिता का पता नहीं था। इसीलिए उनका नाम माता जबाला के नाम के साथ जुड़ा था 'सत्यकाम जाबाल', परन्तु उन्हें गुरु-गौतम ने ब्राह्मण कहकर पुकारा और अपनी शिष्यता दी।[2] जगत-प्रसिद्ध महर्षि वेदव्यास धीवरी के पुत्र थे, परन्तु वे हिन्दू-परम्परा की नस-नस में व्याप्त हैं। उन्हीं के नाम से जुड़े महाभारत, गीता, भागवत, पुराण आदि धर्मग्रन्थ पण्डितों के धर्म-व्यवसाय के साधन हैं। प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य शठकोपाचार्य, तिरुभंगै, गोदा आदि अछूत कही जाने वाली जाति में जन्में थे।[3]

परन्तु उन तप:पूतों ने ही वैष्णवभक्ति की गंगा बहाई थी। वानर-गोत्रिय आदिवासी परिवार में जन्में हनुमान जी आज घर-घर पूज्य हैं। हिन्दू-पण्डित तो इतना उदार है कि वह मत्स्यावतार, कच्छपावतार, शूकरावतार, नृसिंहावतार आदि के नाम लेकर मछली, कछुआ, शूअर तथा नरपशु को भी भगवान मानकर पूजता है, फिर संत की पूजा तो सहज ही है।

संत कबीर साहेब ब्राह्मणी से पैदा हुए कि मुसलमानिन से या जुग्गी-जाति से और उन्हें किसने पाला-पोषा इन सब बातों का कोई महत्त्व नहीं है। कीचड़ और पानीभरे सरोवर में विकसित कमल की भांति वे खड़े हैं और उनसे सत्यज्ञान, निष्पक्षविचार, पवित्र रहनी और सार्वभौमिक चेतना की सुगंधी निकलकर दिग्दिगंत व्याप्त हो रही है।

---

1. **सखी वचन सुन कर रघुनन्दन, बोले मृदु मुस्काते।**
   आपन चाल छिपावहु प्यारी, कहहु आन की बातें॥
   कोइ नहिं जनमें मात-पिता बिनु, बांधी वेद की नीती।
   तुम्हरे तो सब महि से उपजे, अस हमरे नहिं रीती॥
2. **छांदोग्य उपनिषद्, 4/4।**
3. **भारतीय दर्शन, पृष्ठ 469-470, षष्टम संस्करण, शारदामंदिर काशी, पंडित बलदेव उपाध्याय।**

स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं—ये ऋषिगण कौन थे? वात्स्यायन ने लिखा है कि जिसने यथाविहित धर्म की अनुभूति की है, वह म्लेक्ष होने पर भी ऋषि हो सकता है। इसीलिए प्राचीन काल में वेश्यापुत्र वसिष्ठ, धीवरी-तनय व्यास, दासीपुत्र नारद प्रभृति ऋषि कहलाये थे। सच्ची बात यह है कि धर्म का साक्षात्कार होने पर किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता।''[1]

जो लोग मानव का मूल्य नहीं समझते, वे कबीर साहेब को तथाकथित ब्राह्मण-जाति से जोड़ने का प्रयास करते हैं। यदि इस जन्म से फिट नहीं बैठता, तो पिछले जन्म से जोड़ते हैं। किसी ने तो एक दोहा बनाकर कबीर साहेब के मुख से ही कहलवा दिया है ''पाछे जन्म हम बाह्मन होते, ओछे कर्म तपहीना। रामदेव की सेवा चुकी, पकरि जोलाहा कीन्हा॥'' इसका भाव है कि मैं पहले जन्म में ब्राह्मण था, परन्तु मेरे कर्म ओछे थे, मैं तपहीन था, राम की सेवा से चूक गया था, इसलिए इस जन्म में जोलाहा बना दिया गया। परंतु ऐसे वचन कबीर साहेब के मुख से निकल ही नहीं सकते। वे कच्चे धागे से नहीं बने थे। वे ब्राह्मण-शूद्र एवं हिन्दू-मुसलमान आदि के शब्द-जाल में फंसने वाले नहीं थे।

मुसलमान-मुल्ला जैसा कि आज भी मानते हैं, मान रहे थे कि इसलाम ही स्वर्ग एवं मोक्ष का पथ है। केवल मुसलमान स्वर्ग में पहुंचेगा। बाकी सब लोग सदा के लिए नरक की आग में डाल दिये जायेंगे। परन्तु इस शब्द-जाल में भी कबीर साहेब नहीं पड़े। प्रत्युत उन्होंने इस चालभरी बात का मजाक उड़ाया और अपने पैने तर्क मुल्लाओं के सामने पेश किये। यदि कबीर साहेब मुसलिम मत स्वीकार कर लिये होते तो मुल्ला एवं मुसलिम-समाज उन्हें सर-आंखों पर बिठा लेता। परन्तु कबीर साहेब ने मुल्लाओं और ब्राह्मण-पुरोहितों दोनों के मिथ्या दंभों पर घृणा की। कबीर साहेब जाति-वर्ण जैसी झूठी बातों से कभी प्रभावित होने वाले नहीं थे। उनमें हीन-भावना नाम की चीज ही नहीं थी।

अतएव कबीर मानव के पुत्र और मानव थे। इसके अलावा उन्हें ईश्वर, ईश्वर के अवतार तथा पैगम्बर जैसे झूठे विशेषणों से सम्पन्न एवं सिद्ध करना बेमानी है। ईश्वर ही काल्पनिक है और अवतार-पैगम्बर तो घोर काल्पनिक हैं।

3. वे कर्मकरों के पक्षधर थे

संत कबीर साहेब के पोषक माता-पिता बुनकर एवं जोलाहे थे, तो बच्चे का पैतृक काम करना स्वाभाविक है। कबीर साहेब कपड़ा बुनना हीन काम नहीं, किन्तु गर्व का विषय समझते थे। लोग शरीर से करने वाले काम को मोटा काम समझते है, इसलिए उन्हें छोटा समझते हैं और ऐसे काम को वे

---

1. हिन्दू धर्म, पृष्ठ 41-42।

छिपाते हैं। परन्तु कबीर साहेब का दृष्टिकोण इससे बिलकुल भिन्न है। वे बीजक में अपने आप को स्वयं जोलाहा कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। भोजन, वस्त्र और आवास, जीवन के लिए तीनों मुख्य आवश्यकताएं हैं। यदि जीवन में इनका उपयोग करना पाप तथा हीनकर्म नहीं है तो इनके लिए श्रम करना पाप या हीनकर्म कैसे है! यह तो पुनीत काम है।

हमारी पुरानी आर्य-परम्परा कर्मों में निष्ठा रखती थी। हमारे वैदिक ऋषि अधिकतम चरवाहे थे। वे कपड़े भी बुनते थे,[1] वेदों के मंत्रों की रचना करते थे, दवाई बनाते थे और जौ भूनते थे।[2] महाराज श्रीकृष्ण प्रसिद्ध चरवाहे थे, उनके बड़े भाई बलराम हलधर एवं हलवाहक थे। सत्यकाम जाबाल गुरु-गौतम की गायें चराकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं।[3] 'आरुणि-उद्दालक' गुरु के धान के खेत के पानी रोकने के लिए मिट्टी से मेड़ बांधते हैं। पानी के बहाव के जोर से मिट्टी बारम्बार बह जाती है, तो आरुणि उसकी जगह पर स्वयं लेटकर पानी रोकते हैं। 'उपमन्यु' तपस्यापूर्वक गुरु की गायें चराते हैं और ब्रह्मचारी 'वेद' बैल के समान गुरु के बोझा ढोकर आत्मज्ञान प्राप्त करते हैं।[4] ऐतरेय महीदास, वेदव्यास, सूत—सब श्रमिक-परिवार में पैदा होते हैं।

जब से वर्णव्यवस्था बनी और वह उत्तरोत्तर अधिक रूढ़ तथा जड़ हुई, तब से धीरे-धीरे मोटा काम करनेवालों को शूद्र कहकर उन्हें हेयदृष्टि से देखा जाने लगा और उसका परिणाम यह हुआ कि पूरे भारतीय कर्मकरों को नीच मान लिया गया।

संत कबीर साहेब को यह बहुत बुरा लगा। उन्होंने स्वयं कपड़ा बुना और उनसे ऐसी निर्गुण धारा नाम से संत-परम्परा निकली जिसमें नानक साहेब, दादू साहेब, दरिया साहेब, घीसा साहेब, गुलाल साहेब, पलटू साहेब आदि दर्जनों संत मतप्रवर्तक हुए और सब कर्मकर थे तथा कर्मकरों के पक्षधर थे। यह सच है कि श्रीकृष्ण जीवन के प्रथम पक्ष में ही गायें चराने का अवसर पाये। उसके बाद वे राजनीति में लग गये। इसी प्रकार कबीर साहेब अपने जीवन के कैशोर तक ही कपड़े बुनने का अवसर पाये। उसके बाद धर्म-आंदोलन में देश के कोने-कोने में भ्रमण करने लगे; परन्तु वे कर्म को आदर देते थे। और उन्होंने जीवनभर कर्मकरों को उच्च दृष्टि से देखा।

---

1. **ऋग्वेद 2/28/5।**
2. **ऋग्वेद 9/112/3।**
3. **छांदोग्य उपनिषद्, चतुर्थ प्रपाठक।**
4. **महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 3।**

4. गुरु : स्वामी रामानन्द

संत कबीर साहेब के समय में काशी में स्वामी रामानन्द एक योग्य वैराग्यवान, विद्वान एवं उदार संत थे। अनेक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि कबीर साहेब ने उन्हें अपना गुरु चुना। भक्तकवि व्यास, परम वैष्णव नाभादास, अनंतदास, सूरत के संत निर्वाण साहेब आदि ने माना है कि कबीर साहेब के गुरु रामानन्द थे।

कुछ विद्वान मानते हैं कि स्वामी रामानन्द का शरीर छूट चुका था तब कबीर साहेब का जन्म हुआ है। कुछ विद्वान मानते हैं कि कबीर साहेब का गुरु उनका विवेक ही था। कोई मनुष्य उनका गुरु नहीं था। कबीरपंथ मानता है कि कबीर साहेब ने स्वामी रामानन्द को अपना गुरु चुना था केवल गुरुमर्यादा रखने के लिए।

कबीर साहेब की वाणी में गुरु की महिमा का बहुत गायन किया गया है। अतएव उन्होंने किसी को अपना गुरु स्वीकारा हो तो यह स्वाभाविक ही है। यदि स्वामी रामानन्द उस समय जीवित थे तो वे ही कबीर साहेब के गुरु हो सकते हैं, क्योंकि अनेक संतों ने उन्हीं को स्पष्ट रूप से लिखा है। सूरत के निर्वाण साहेब कबीर साहेब के समसामयिक थे और उन्होंने इसकी स्वीकृति की है। चाहे कोई कितना ही तेजवान पुरुष हो, आरम्भ में तो उसको भी दूसरे के सहारे की आवश्यकता पड़ती है।

यह निश्चित है कि कबीर साहेब अपने बचपन से ही अत्यन्त पैनी दृष्टि वाले थे। गरीबदासजी साहेब कहते हैं ''जब कबीर साहेब पांच वर्ष के थे तभी उनमें आश्चर्यजनक विशेषता थी। वे उसी समय से ज्ञान, ध्यान और सद्‌गुणों में सिरमुकुट हो गये थे।''[1] इस कथन में अतिशयोक्ति हो सकती है, परन्तु यह निश्चित है कि कबीर साहेब अपनी थोड़ी उम्र से ही तीव्र बुद्धि के अत्यंत संवेदनशील पुरुष थे।

यदि कबीर साहेब ने स्वामी रामानन्द की शिष्यता स्वीकारी होगी तो उनके वैराग्य, संत-स्वभाव एवं सद्‌गुणों से ही ज्यादा प्रेरणा ली होगी। ज्ञान के क्षेत्र में उनसे उनकी दूरी बनी रही होगी। स्वामी रामानन्द परोक्ष ईश्वर के उपासक थे, कबीर साहेब अपरोक्ष स्व-स्वरूप-विवेकी एवं आत्मानुभूति के पक्षधर थे। स्वामी रामानन्द अवतारवादी एवं मूर्तिपूजक थे, कबीर साहेब इन दोनों बातों से परे थे।

---

1. **पांच बरस के जब भये, काशी मांझ कबीर।**
   गरीब दास अजब कला, ज्ञान ध्यान गुण सीर॥

किंवदंतियां भी उक्त बातों की साक्षी हैं। कहा जाता है कि एक बार स्वामी रामानन्द ने कबीर साहेब से कहा कि जाकर कहीं से गाय का दूध ले आओ, भगवान का भोग लगाना है। कबीर साहेब लोटा लिये और एक मैदान में चले गये जहां एक गाय का कंकाल पड़ा था। कबीर साहेब ने उस कंकाल के मुख के सामने थोड़ी घास रख दी और उससे बारंबार कहने लगे कि माता उठो, दूध दो।

जब काफी देर हो गयी, तब स्वामी जी ने किसी दूसरे साधु को भेजा कि भई, देखो कबीर दूध लेने गया और अभी तक नहीं आया। उस साधु ने कबीर साहेब की दशा देखकर सब बातें स्वामी रामानन्द को बता दीं। स्वामी जी ने खड़ाऊ पहनी और जल्दी-जल्दी चले कबीर साहेब के पास और पहुंचकर झटके से कहा—कबीर! तुम क्या तमाशा करते हो? क्या यह मरी गाय का कंकाल दूध देगा?

कबीर साहेब ने विनम्रता से कहा—गुरुदेव, जिस भगवान का आप भोग लगाना चाहते हैं क्या वे दूध पीने की शक्ति रखते हैं!

स्वामी जी निरुत्तर रह गये। उनके पास कोई जवाब नहीं था। धीरे-धीरे स्वामी रामानन्द ने स्वयं समझ लिया था कि कबीर महान हैं।

कबीर साहेब की प्रामाणिक कृति बीजक में केवल एक जगह स्वामी रामानन्द का नाम आया है। उसमें एक उलाहना है। वे कहते हैं "स्वामी रामानन्द रामरस में माते रहे, मैं उन्हें कह-कह कर थक गया।"[1] इस पंक्ति में दो बातें ध्यातव्य हैं—रामरस में मस्त होना तथा कह-कहकर थकना। रामरस में तो कबीर साहेब भी डूबे रहते थे; परन्तु उनका राम निज स्वरूप चेतन था। आत्मानुभूति ही उनका रामरस में डूबना था। परन्तु स्वामी रामानन्द अपने आत्मा से परे परोक्ष राम मानकर या दाशरथी राम में मस्त थे। कबीर साहेब को यह खटकता था। इसलिए वे बारम्बार स्वामी जी से निवेदन करते रहे होंगे कि स्वामी जी! बाहर राम की कल्पना तो व्यर्थ ही है। स्वात्माराम की स्थिति ही अपना प्राप्तव्य हो सकती है। परन्तु बारंबार कहने पर भी जब स्वामी जी ने इधर ध्यान नहीं दिया होगा, तब कबीर साहेब ने मानो उलाहना में कहा कि मैं कह-कह कर थक गया, परन्तु स्वामी जी मेरी बातों पर ध्यान नहीं दे सके।

इस विचार से स्वामी रामानन्द और कबीर साहेब का घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध होता है। लोग अपनों को ही ऐसा शब्द कहते हैं। जिसे बहुत अपना माना जाता है जब बारंबार उसे किसी बात का सुझाव दिया जाता है और वह उसकी

---

1. **रामानन्द रामरस माते, कहहिं कबीर हम कहि-कहि थाके ॥ बीजक, शब्द 77 ॥**

बराबर उपेक्षा कर देता है, तब विवश होकर कहा जाता है ''मैं कह-कह कर थक गया, परन्तु आपने मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया।''

यद्यपि तेजवान-से-तेजवान पुरुष को भी अनेक संतों, विद्वानों, सामान्य लोगों, साहित्यों, संसार की घटनाओं आदि से बहुत-कुछ सीखने को मिलता है, बिना आधार के कोई कुछ नहीं हो सकता; तथापि इस संसार में कभी-कभी ऐसे महापुरुष होते हैं जो संसार की अनेक घटनाओं, मत-मजहबों आदि को देखकर स्वयं के विवेक-मंथन से सत्य का शोधन कर लेते हैं। कबीरपंथ के महान संत परम पारखी श्री रामरहस साहेब ने अपने महान ग्रंथ पंचग्रंथी में इस तरह साफ-साफ निर्देश किया है। उन्होंने कबीर साहेब की तरफ संकेत करके पंचग्रन्थी में कई जगह इसका वर्णन किया है।[1]

सार यह है कि कबीर साहेब ने मर्यादा के लिए स्वामी रामानंद को गुरु माना होगा इसमें कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु उनका असली गुरु स्वयं का विवेक था। इन दोनों बातों का समर्थन सभी संत एवं विद्वान करते हैं।

5. वे आजीवन विरक्त संत थे

विद्वानों ने कबीर साहेब को समझने में गहरी भूलें की हैं। उन्होंने कुछ इधर-उधर की उड़ी-उड़ी बातें लेकर कबीर साहेब को गृहस्थ सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है और खेद है यही सब स्कूलों, कालेजों एवं विश्वविद्यालयों के छात्रों को पढ़ाया जाता है।

किसी महापुरुष को समझने के लिए दो माध्यम होते हैं—अंतस्साक्ष्य एवं बहिस्साक्ष्य। अंतस्साक्ष्य उनकी वाणी होती है और बहिस्साक्ष्य उनकी परंपरा तथा अन्य प्रामाणिक सामग्री। हम पहले बहिस्साक्ष्य को लें। पूरे कबीरपंथ में, चाहे भारत हो या भारत के बाहर, कबीर साहेब को आजीवन विरक्त माना जाता है। काशी कबीरचौरा में जो कबीर साहेब की साधना एवं कार्य स्थली है, शुरू से लेकर आज तक विरक्त महंत होते आये हैं। यह परम्परा कबीर साहेब को विरक्त मानती है। इसके अलावा जागू साहेब तथा भगवान साहेब की परम्परा जो विरक्त-गद्दियां हैं और कबीर साहेब के काल से हैं, कबीर साहेब

---

1. **केवल एक जगह की थोड़ी पंक्तियां लें–**

देखि अनेक रीति अकुलाना। निज शोधन तब कियो सुजाना॥
सत्य विचार धीरता पाई। दया शील उर बसो सहाई॥
प्रेम गोहार स्वतः पद देखा। इन्ह के लहत सब मिटै अलेखा॥
ठहरि यथारथ पारख कीन्हा। लहत प्रकाश स्वतः पद चीन्हा॥
स्वतः दृष्टि जब जेहि भई भाई। सोई गुरुपद ठहर परखाई॥

(पंचग्रंथी, गुरुबोध, प्रश्नोत्तर 6)

को विरक्त मानती हैं। इनके बाद धर्म साहेब की शाखा है। इसमें गृहस्थ तथा विरक्त दोनों प्रकार के महंत होते हैं। परन्तु ये भी कबीर साहेब को आजीवन विरक्त मानते हैं।

गृहस्थ-आश्रम में भी महान-से-महान संत हो सकते हैं। यदि कबीर साहेब-जैसे संतशिरोमणि पुरुष गृहस्थी में ही रहे हों, तो वे छोटे तो नहीं हो जायेंगे कि कबीरपंथी लोग उनको बलात विरक्त सिद्ध करने लग गये हों। कबीर-जैसे सर्वत्र अनासक्त एवं उच्चतम संत गृहस्थ-आश्रम में रहें या विरक्त-आश्रम में, इसका कोई मूल्य नहीं है। वे इन दोनों आश्रमों से ऊपर हैं। परन्तु एक तथ्य को अनदेखा नहीं करना चाहिए। पूरा कबीरपंथ उनको विरक्त मानता है। तब दूसरों को भी इस बात पर ध्यान देकर विचार करना चाहिए।

कबीर साहेब के समय में सूरत के निर्वाण साहेब एक योग्य संत एवं कवि थे। उन्होंने कबीर साहेब को युगनयुगन का योगी और अवधूत विरक्त लिखा है।[1] मोहसिनफानी (1670) ने लिखा है कबीर एक वैरागी थे।[2] सबसे बलवान प्रमाण तो कबीरपंथ अपने आप है जो शुरू से ही कबीर साहेब को विरक्त मानता है।

अंतस्साक्ष्य में कबीर साहेब का प्रामाणिक ग्रंथ बीजक है। पूरा बीजक पढ़ जाने पर कोई निष्पक्ष विवेकी उसके रचयिता को गृहस्थ नहीं मान सकता। बीजक का उनका प्रसिद्ध शब्द "माया महा ठगिनी हम जानी।" में उन्होंने "केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी" तथा "ब्रह्मा के ब्रह्मानी" कहकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव को इसलिए मायालिप्त या माया द्वारा ठगे गये बताया है क्योंकि ये तीनों सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती से संबद्ध थे। क्या जो स्वयं किसी स्त्री से संयुक्त हो वह दूसरे स्त्री वाले को माया द्वारा ठग लिया गया कह सकता है! "जहां जराई सुन्दरी, तू जनि जाय कबीर। उड़ि के भसम जो लागई, सूना होय सरीर।" जो इस प्रकार स्त्री की याद भी साधकों के पथ का बंधन समझता है वह क्या स्त्रीयुत हो सकता है?

कबीर साहेब बीजक में कहते हैं—

माया के झक जग जरे, कनक कामिनी लाग।
कहहिं कबीर कस बाँचिहो, रूई लपेटी आग॥
माया जग साँपिनि भई, विष ले पैठि पताल।
सब जग फन्दे फन्दिया, चले कबीरू काछ॥

---

1. **कबीरा जुगन-जुगन का जोगी, अवधू को पिछनायो।**
2. **कबीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ 22, डॉ० रामकुमार वर्मा।**

साँप बिच्छू का मंत्र है, माहुरहू झारा जाय।
विकट नारि के पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय॥
कनक कामिनी देखि के, तू मत भूल सुरंग।
मिलन बिछुरन दुहेलरा, जस केंचुलि तजत भुवंग॥

(बीजक, साखी 141, 142, 143, 148)

स्वनामधन्य डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने ढंग से कबीर साहेब पर बहुत काम किया है, परन्तु इस दिशा में तो उन्होंने अनर्थ कर डाला है। उन्होंने गुरुग्रन्थ में जो कबीर साहेब के नाम से वाणियां हैं उन्हीं का संग्रह करके 'संत-कबीर' नाम से प्रकाशित किया है और उसके आरम्भ में एक लम्बी प्रस्तावना लिखी है। अपने संग्रह से उन्होंने कुछ पंक्तियां उद्धृत कर तथा उसका स्थूल अर्थ कर बड़ी बहादुरी के साथ कबीर की दो पत्नियों की खोज कर डाली है। उनकी पंक्तियां ये हैं—

मेरी बहुरिया को धनिया नाऊ। लै राखियो रमजनिया नाऊ॥
पहली कुरूपि कुजाति कुलखनी। अबकी सरूपि सुजाति सुलखनी॥

उक्त पंक्तियां बीजक की नहीं हैं, परन्तु उनका अर्थ उत्तम है। डॉ० साहेब उक्त पंक्तियों के आधार पर कहते हैं "कबीर की पहली पत्नी लोई नाम की थी और दूसरी 'धनिया' नाम की। जिसका दूसरा नाम 'रमजनिया' था। यह संभवत: वेश्या थी, किन्तु कबीर की दृष्टि में वेश्या किसी भांति हीन न समझी गयी हो।"[1]

कबीर साहेब की वाणियां रूपकों, प्रतीकों आदि से भरी हैं। उनके आध्यात्मिक अर्थ होते हैं। यहां पर बहुरिया मनोवृत्ति है जो पहले धनिया रहती है अर्थात धन-दौलत एवं माया में आसक्त रहती है। परन्तु जब साधक साधना में परिपक्व हो जाता है तब उसकी वह मनोवृत्ति रमजनिया हो जाती है अर्थात राम में रमने वाली हो जाती है। पहली मनोवृत्ति जो मायासक्त थी कुरूप, कुजाति और कुलक्षण वाली थी, अर्थात विकारी थी। परन्तु अब बोधज्ञान हो जाने पर वह सुरूप, सुजाति एवं सुलक्षण वाली, अर्थात निर्मल हो गयी।

यह स्वाभाविक बात है कि साधक का मन पहले मलिन होता है। आगे साधना द्वारा शुद्ध होकर आत्मपरायण हो जाता है। इस क्रम में दो पंक्तियां लें—

पहली को घाल्यों भरमत डोल्यो, संचु कबहुं नहिं पायो।
अबकी घरनि धरी जा दिन थै, सगलों भरम गवांयो॥

(बानी, पद 229)

---

1. **संत कबीर, डॉ० रामकुमार वर्मा।**

उक्त पंक्तियों का सरल अर्थ होगा कि पहली पत्नी के चक्कर में मैं भटकता फिरता था और मुझे कभी सुख नहीं मिला, परन्तु अबकी पत्नी को जब से पाया तब से सारी भ्रांतियां मिट गयीं।

इसमें भी मलिन मनोवृत्ति तथा पवित्र मनोवृत्ति की ही चर्चा है। साधक पहली मलिन मनोवृत्ति के चक्कर में पड़कर भटकता है, परन्तु साधना द्वारा शुद्ध मनोवृत्ति पाकर उसका सारा भटकना बंद हो जाता है। उसके सारे भ्रम मिट जाते हैं। ''सगलों भरम गवांयो'' पर ध्यान दीजिए। किसी व्यक्ति को जब अच्छी पत्नी मिल जाती है तब क्या उसके सारे भ्रम मिट जाते हैं? सारे भ्रम मिटने का मतलब है अविद्या की पूर्ण निवृत्ति।

उक्त जैसी दो पंक्तियां लें—

मुई मेरी माई, हऊ खरा सुखाला।
पहरिऊ नहिं दगली, लगे न पाला॥

अर्थात—मेरी माता मर गयी, इसलिए मैं बहुत सुखी हो गया। अब न अंगरखा पहनूंगा और न ठण्डी लगेगी।

इसका ऊपरी अभिप्राय यही है कि कबीर साहेब की माता उन्हें अंगरखा पहनाती थीं, परन्तु वे उसे नहीं पहनना चाहते थे और इसको लेकर कबीर साहेब अपनी माता से बहुत दुखी थे। जब एक दिन उनकी माता मर गयीं, तब वे बहुत सुखी हो गये और कहने लगे कि अब आगे कभी न अंगरखा पहनूंगा और न ठण्डी लगेगी।

क्या ऊपर का शाब्दिक अर्थ एक पागलखाने की बात नहीं है! क्या कबीर साहेब-जैसे उच्च ज्ञानी संत-पुरुष अपनी माता की इसलिए मरण-कामना कर रहे थे कि वे मुझे अंगरखा पहनाती हैं और माता के मरते ही कबीर साहेब आनंद-विभोर हो गये! विशेषता तो यह कि अब आगे अंगरखा न पहनने से ठण्डी नहीं लगेगी। क्या अंगरखा पहनने से ठण्डी लगती है और न पहनने से ठण्डी नहीं लगती है?

वस्तुतः उक्त पंक्तियों का आध्यात्मिक अर्थ है कि मेरी ममता-माया रूपी माता मर गयी इसलिए मैं सच्चे अर्थ में सुखी हो गया। अब आगे शरीर रूपी अंगरखा नहीं पहनूंगा और इसलिए सांसारिकता की ठण्डी नहीं लगेगी।

डॉ० रामकुमार वर्मा की उक्त मिथ्या धारणा पर असहमति प्रकट करते हुए श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव लिखते हैं—''अब यह अपनी रुचि है कि हम ऐसे पदों में आये हुए कुल सम्बन्ध सूचक शब्दों का मुख्यार्थ लेकर कबीर की पत्नी के देवर, जेठ, ननद, बाप, सगे भइया (बानी पद 230) आदि का इतिहास ढूंढ़ निकलने में माथापच्ची करें या उनके सांकेतिक अर्थ लेकर संगति

बैठायें। हम नहीं समझते कि अपने कुल वालों का यह असंगत पचड़ा सुनाने में कबीर का क्या उद्देश्य हो सकता था। हां, सांकेतिक अर्थ से अवश्य उनके भाव पूर्णतया स्पष्ट हो जाते हैं। कबीर ने राम को भुलवाने वाली ''बौरी मति'' और राम में रमने वाली ''सुन्दरमति'' का उल्लेख अन्यत्र किया भी है।''[1]

डॉ० युगेश्वर लिखते हैं—''कबीर की दो पत्नियों की कल्पना और उस पर यह पहली दूसरी का अनुमान हिन्दी कविता के अध्ययन का अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार की कल्पनाएं बिलकुल छिछिली और सतही हैं। आश्चर्य तब होता है जब यह प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा कही जाती है। इसमें पहली बात तो यह है कि कबीर रूपकों में बात करते हैं। उन्होंने कहीं भी अपनी पत्नी का नाम लोई नहीं कहा है। हां, धनिया अवश्य कहा है। किन्तु धनिया और रमजनिया केवल तुक के लिए है। ध्यान रखना होगा कि कबीर अपने को भक्त और भगवान दोनों मानते हैं। इसलिए स्त्री मात्र का पर्याय 'धन्या' का तद्भव 'धनिया' अपनी पत्नी का नाम बताते हैं। 'धनिया' और 'रमजनिया' केवल प्रतीक हैं। यहां न तो उनकी कोई पहली पत्नी थी न कोई दूसरी। जिसे वे पहली कहते हैं वह माया है और दूसरी है भक्ति।''[2]

कबीर साहेब ने बीजक में कहा है ''माया मोह बंधा सब लोई'' (रमैनी 84) ''तुम यहि विधि समझो लोई'' (शब्द 82) तथा ''कहहिं कबीर सुनो नर लोई'' (शब्द 104)। बीजक के बाहर की वाणियों में, जो कबीर साहेब के नाम से प्रसिद्ध हैं, आता है ''माया मोह धन जोबन, इन बंधे सब लोई'' (क० ग्रन्थ पृष्ठ 229) ''बे अकली अकलि न जानहीं, भूले फिरै ए लोई'' (वही 239) ''रंग न चीन्हें मूरख लोई। जिहि रंग रंगि रह्या सब लोई'' (बानी, पद 27) ''सरग के पथि जात सब लोई'' (वही 239)।

उपर्युक्त प्रकार से जहां भी कबीर साहेब ने लोई कहा है वह सब लोगों के अर्थ में है। जैसे ''माया मोह बंधा सब लोई'' का अर्थ है कि सब लोग माया के मोह में बंधे हैं। परन्तु कुछ विद्वान लोई शब्द को घसीटकर उसे स्त्री बना देते हैं।

डॉ० युगेश्वर लिखते हैं—''डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'मधुमालती' में लोई का प्रयोग लोग के अर्थ में आया है—

कलि अवतरिभा अमर न कोई, अंत हाथ पछितावा लोई।

---

1. **कबीर साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ 341, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस, वि० सं० 2008।**
2. **कबीर समग्र, पृष्ठ 96।**

शेष अब्दुल कुद्दूष गंगोही की 'अलख बानी' में लोई शब्द के प्रयोग अनेक बार हुए हैं—

अलख दास आखे सुन लोई।
चरपट कहै सुनो रे लोई॥

गोरख बानी में लोई शब्द—

बंदत गोरखनाथ सुनो नर लोई।

''साफ है कि कबीर कहीं भी लोई को अपनी स्त्री नहीं कहते। लोई को कबीर की स्त्री कहना किसी पंडित की भाषा-विज्ञानी भूल थी। किसी प्रभावशाली पंडित के कारण लोई कबीर की पत्नी के रूप में जनश्रुति बन गयी। यह भी हो सकता है कि कभी किसी ने इसका दार्शनिक प्रयोग किया हो। कबीर पुरुष है और पूरी सृष्टि उनकी स्त्री है, ऐसा दार्शनिक प्रयोग किया हो। कबीर ईश्वर पुरुष है। इस जनश्रुति की खोज आवश्यक है। अभी इतना ही। कबीर ग्रन्थावली और प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लोई व्यक्तिवाचक नाम नहीं है। इसलिए कबीर की पत्नी होने का सवाल नहीं उठता।...कबीर की पत्नी का नाम लोई बिलकुल ही काल्पनिक और भ्रममूलक आधारों पर प्रचलित है।''[1]

कबीर साहेब की वाणियों में आये हुए रूपकों के यदि लक्षणा अर्थ न समझे गये और उनके अभिधा (शाब्दिक) अर्थ ही किये गये, तो घोर अनर्थ होगा। यहां बीजक के दो शब्द दिये जा रहे हैं। ध्यान से मनन करें—

माई मैं दूनों कुल उजियारी।
सासु ननद पटिया मिलि बँधलो, भसुरहि परलों गारी।
जारों माँग मैं तासु नारि की, जिन सरवर रचल धमारी॥
जना पाँच कोखिया मिलि रखलों, और दूई औ चारी।
पार परोसिनि करों कलेवा, संगहिं बुधि महतारी॥
सहजे बपुरे सेज बिछावल, सुतलिउँ मैं पाँव पसारी।
आवों न जावों मरों नहि जीवों, साहेब मेट लगारी॥
एक नाम मैं निजु कै गहलौं, ते छूटल संसारी।
एक नाम मैं बदि कै लेखों, कहहिं कबीर पुकारी॥ (शब्द 62)

xx xx xx

ननदी गे तैं बिषम सोहागिनि, तैं निन्दले संसारा गे।
आवत देखि मैं एक संग सूती, तैं औ खसम हमारा गे॥

---

1. **कबीर समग्र, पृष्ठ 99।**

मोरे बाप के दुई मेहररुआ, मैं अरु मोर जेठानी गे।
जब हम रहलि रसिक के जगमें, तबहि बात जग जानी गे॥
माई मोरि मुवलि पिता के संगे, सरा रचि मुवल सँगाती गे।
आपुहि मुवलि और ले मुवली, लोग कुटुम संग साथी गे॥
जौं लौं श्वास रहे घट भीतर, तौं लौं कुशल परी हैं गे।
कहहिं कबीर जब श्वास निकरिगौ, मन्दिर अनल जरी हैं गे॥ (कहरा 11)

उक्त पदों का क्रमशः शाब्दिक अर्थ होगा—हे मां! मैं दोनों कुलों की प्रकाशिका हूं। जब मैं ससुराल में गयी तब सासु और ननद को अपनी खाट की पाटी में बांध दिया और जेठ को खूब गाली दी। उस नारी की मैंने मांग जला दी, उसे विधवा कर दिया, जिसने सरोवर में उछल-कूद मचा रखा था। पांच लोगों को मैंने अपने बगल में दबा लिया तथा दो-चार और को दे रगड़ा। पार-पड़ोसिनों को जलपान में खा गयी इत्यादि (शब्द 62)। हे ननदी! तू बलवान अहिवाती है। तूने सारे संसार को नींद में सुला रखा है। जब मैं आती हूं तब देखती हूं कि तू मेरे पति को लेकर एक साथ सोई है। मेरे पिता की दो पत्नियां हैं एक मैं तथा दूसरी मेरी जेठानी। जब मैं रसिक के जगत में थी तभी लोग यह बात जान गये थे। मेरी माता मेरे पिता के साथ में मर गयी और वह चिता बनाकर अपने साथियों को लेकर जल मरी इत्यादि (कहरा 11)।

यदि उपर्युक्त पदों का इसी प्रकार शाब्दिक अर्थ किया जाये तो एक पागलपन का प्रलाप मात्र होगा।

पहले पद (शब्द 62) का अर्थ है—स्वरूपस्थ वृत्ति चेतना शक्ति से कहती है कि हे माता! मैं स्वार्थ-परमार्थ—दोनों कुलों की प्रकाशिका हूं। मैंने संशय-सासु तथा कुमति-ननद को अपनी स्थिति-शय्या की पाटी में बांध रखा है और अहंकार-जेठ का तिरस्कार कर दिया है। जिसने हृदय-सरोवर में उधमबान मचा रखा था उस अविद्या-नारी की मांग जला दी, उसे नष्ट कर दिया है। पांच ज्ञानेन्द्रियों, शुभाशुभ वृत्तियों एवं चतुष्टय अंतःकरण को अपने वश में कर लिया। दुर्वासनाएं रूपी पार-परोसिन का जलपान कर गयी, किन्तु सद्बुद्धि रूपी माता को सदैव साथ रखती हूं। बेचारे स्वरूपज्ञान रूपी पति ने सहज समाधि की शय्या बिछा दी और मैं उस पर पांव पसारकर सो रही हूं। अब मेरा आने-जाने तथा जन्मने-मरने का भय मिट गया, क्योंकि गुरु साहेब ने सारी ममता छुड़ा दी। जिसका नाम चेतन या राम है उस निज स्वरूप को ही मैंने ग्रहण कर लिया है जिससे मेरी सांसारिकता छूट गयी। कबीर साहेब जोर देकर कहते हैं कि मैंने निश्चयपूर्वक एक नाम की परख कर ली है।

दूसरे पद (कहरा 11) का अर्थ है—विद्या-वृत्ति कहती है "अगे, कुमति-ननदी, तू अत्यन्त सौभाग्यवती है। तूने सारे संसार को मोह-नींद में सुला लिया

है। मैं जब देखती हूं तब मेरा पति जीव तेरे साथ सोया है। मेरे अहंकार-पिता की दो पत्नियां हैं, एक मैं (विद्या) तथा दूसरी मेरी जेठानी (अविद्या)। जब मैं अधिक संसारी थी, तभी लोग यह बात जान गये थे। मेरी ममता-माता अहंकार-पिता के साथ मर गयी। उसके संगी-साथी अविद्या के परिवार भी ज्ञान-चिता में जल मरे। इस प्रकार ममता-माता स्वयं तो मरी ही, वह अपने लोग-कुटुम्ब, संगी-साथियों को लेकर भी समाप्त हो गयी। जब तक शरीर में श्वास है, तब तक अविद्या को नष्ट कर कुशल-कल्याण करने का अवसर है। कबीर साहेब कहते हैं कि जब श्वास निकल जायेगा, तब शरीर-मंदिर जल जायेगा। फिर कुछ करना संभव नहीं।

उपर्युक्त दोनों पदों का अर्थ कितना सुन्दर, मनोरम एवं कल्याणकारी है, सोचते ही बनता है। इनका कोई स्थूल अर्थ करेगा तो अनर्थ ही होगा।

ऋग्वेद (8/85/13-16)[1], छांदोग्य उपनिषद् (3/17/6) तथा महाभारत में जहां श्रीकृष्ण की चर्चा है, वे कहीं भी पर-स्त्रियों को लेकर रास नहीं करते हैं और न राधा ही कहीं उनकी प्रेमिका है। परन्तु हरिवंश में संक्षिप्त रास आ गयी, भागवत में रास का बड़ा रूप हो गया और ब्रह्मवैवर्त में और अश्लील हो गया तथा वहां राधा भी आ गयीं और गर्गसंहिता में श्रीकृष्ण की अरबों-खरबों पत्नियां हो गयीं। इसी प्रकार आदि काव्य वाल्मीकि रामायण में श्रीराम केवल एक पत्नीव्रती हैं, परन्तु पीछे रसिक पंडितों ने हनुमत संहिता, काकभुशुंडि रामायण, महा रामायण, बृहत कौशल खण्ड आदि में उन्हें हजारों पर-नारियों से जोड़कर उनके चरित्र का हनन कर दिया। फिर बालब्रह्मचारी परम विरक्त कबीर साहेब को ये लेखक लोग एक-दो स्त्रियों से जोड़ दें, तो क्या आश्चर्य!

कबीर साहेब परम विरक्त संत थे। इसकी घोषणा उनकी वाणियां ही कर रही हैं तथा उनके नाम पर प्रचलित पंथ एक स्वर से उन्हें विरक्त संत मानता है, इस बात का आदर विद्वानों को भी करना चाहिए और उन्हें अपना पूर्वग्रह छोड़कर कबीर साहेब का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए। सरकार को यही बात विद्यालयों में पाठ्यक्रम में रखनी चाहिए।

6. विरोध और सम्मान

सद्गुरु कबीर के शरीरांत (वि० सं० 1575) के कोई पचास वर्ष बाद एक ''कबीर परिचई'' लिखी गयी, जिसके लेखक अनंतदास जी थे, जो संभवत: एक वैष्णव संत थे। यह 'कबीर परिचई' तीन सौ सत्तासी (387) चौपाइयों तथा तेरह (13) दोहों में है।

---

1. **जहां खिल भाग है वहां यह अंश 85/96/13-16 में पड़ता है।**

इस ग्रन्थ में यह चित्रित किया गया है कि कबीर साहेब शरीर के सांवले और बहुत सुन्दर थे। वे माया-मोह एवं लोभ के त्यागी थे। वे उदार थे और अपनी वस्तु दूसरे की सेवा में लगा देते थे। उनकी सुकीर्ति काशी में बहुत बढ़ गयी थी। इससे कुछ ब्राह्मण, संन्यासी और मुल्ला ईर्ष्या से क्षुब्ध हो गये थे। इन लोगों ने तात्कालिक बादशाह सिकंदर लोदी से शिकायत की कि कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मों का खंडन करके अपने नये विचार फैला रहे हैं।

उक्त बातें सुनकर सिंकदर लोदी कबीर साहेब पर बहुत क्रुद्ध हो गया। उसने अनेक प्रकार से दण्ड देना चाहा। सिकंदर लोदी ने कबीर साहेब को जंजीर में बंधवाकर गंगा में फेंकवा दिया, परन्तु जंजीर टूट गयी और कबीर साहेब पानी पर बैठ गये। उन्हें मारने के लिए हाथी छोड़ा गया, परन्तु हाथी कबीर साहेब से दूर भाग खड़ा हुआ। इसके बाद उन्हें कुआं में डालकर ऊपर से मिट्टी पाट दी गयी, परन्तु वे बाहर घूमते हुए दिखाई दिये। फिर कबीर साहेब को एक मकान में बंदकर आग लगा दी गयी, परन्तु उन्हें मकान के बाहर टहलते हुए पाया गया। इसी प्रकार अनेक उपाय किये गये, परन्तु कबीर साहेब का बाल भी बांका न हुआ। इन अतिरंजनापूर्ण कथनों का सार यही है कि कबीर साहेब सत्य के कारण और उनके साथ आम जनता होने के कारण पुरोहितवर्ग तथा शासन उन्हें कष्ट न दे सका। मुल्ला, पंडित तथा सिकंदर लोदी द्वारा इतना विरोध पाकर भी कबीर साहेब ने उनके प्रति दयापूर्ण एवं क्षमाभाव का बरताव किया। इन सबके कारण सिकंदर लोदी कबीर साहेब के सामने विनम्र हो गया। वह कबीर साहेब को धन, जागीर एवं गांव देने लगा। कबीर साहेब ने कुछ भी लेने से इंकार कर दिया। इस घटना के बाद कबीर साहेब की सुकीर्ति अधिक फैल गयी और काशी के पंडित तथा मुल्ला भी उन्हें सम्मान देने लगे।

वैसे संसार के महान-से-महान पुरुष को सर्वत्र सब समय सबसे सम्मान नहीं मिलता। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, नानक, दयानन्द, विवेकानन्द, ईसा, मुहम्मद या इसी ढंग से पचासों महापुरुषों के नाम ले लिये जायें, उनके जीवन भर उनके अनेक विरोधी भी रहे हैं। फिर इसका अपवाद कबीर साहेब कैसे हो सकते हैं जो सबके बाह्याडम्बर से हटकर केवल अपने ढंग के थे। परन्तु उनके सत्यज्ञान एवं सत्य व्यवहार की सुकीर्ति इतनी छा गयी थी कि अपनी तीस वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते वे पूरे उत्तरी भारत में शुभ-चर्चा के विषय बन गये।

किसी सत्य से चिढ़कर कुछ स्वार्थी तथा अहंकारी लोग भले उस पर धूल उड़ाएं और लगे कि वह ढक गया, परन्तु यह स्थिति बहुत क्षणिक होती है। अंततः सत्य का सूर्य चमक उठता है। सत्य पथ पर चलने वाला विजयी होता

है। सत्य ही भगवान है और उसको ऊपर आना ही है। दिन जितने बीतते गये कबीर साहेब की सत्यता प्रकट होती गयी।

7. चमत्कार

बिना उपयुक्त कारण के ही कार्य का हो जाना चमत्कार कहलाता है। अथवा जो संसार की कारण-कार्य-व्यवस्था में नहीं है वह किसी महापुरुष के इच्छामात्र से या कह देने मात्र से हो जाना चमत्कार कहलाता है। वस्तुत: संसार में बिना उपयुक्त कारण के कार्य नहीं होता। जो संसार के नियम एवं कारण-कार्य-व्यवस्थाएं हैं, उनसे हटकर कभी कुछ नहीं होता। असंख्य संत, तथाकथित अवतार, पैगम्बर एवं ईश्वर मिलकर भी न एक मरी हुई चींटी को जिला सकते हैं और न प्रकृति को प्रेरित करके पानी की एक बूंद आकाश से टपका सकते हैं। यह परम वास्तविकता है।

परन्तु संसार के सभी महापुरुषों के पीछे उनके बहादुर भक्तों ने उनके विषय में चमत्कारों के धुआं का धौरहरा खड़ा किया है। धर्म, महात्मा, अवतार, पैगम्बर, देव, ईश्वर आदि नाम ले लेने के बाद हजार झूठ को समाज से सत्य मनवाया जा सकता है। दैववाद और चमत्कारवाद ने मनुष्य के मन को विवेकहीन बनाकर दुर्बल कर दिया है। इसलिए आदमी पोंगापंथी बनकर केवल छू मंतर से सारी ऋद्धि-सिद्धि एवं कल्याण-गति पाना चाहता है। ऐसे लोगों का स्वावलम्बन एवं सत्पुरुषार्थ से कोई प्रयोजन नहीं रहता, जो सारी उन्नतियों के कारण हैं।

चमत्कार मानवता के साथ एक छल-कपट है, परन्तु संसार के सभी संप्रदाय वालों ने अपने महापुरुषों की झूठी महिमा बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया है। इसलिए संसार के सभी देश और काल के महापुरुषों के नाम पर लगे चमत्कार एक-जैसे हैं। जैसे कि वे अलौकिक थे। किसी ईश्वर के भेजे, किसी लोक से आये एवं इच्छानुसार देहधारी थे। उन्होंने मुरदे को जिला दिया, थोड़ी वस्तु को उसके हजारों गुणा बढ़ा दिया। उनके आज्ञानुसार जड़-पदार्थ काम करने लगे। उन्होंने सूखी नदी में पानी बहा दिया। जहां नदी नहीं थी वहां नदी प्रकट कर दी। आज्ञा देकर पानी बरसा दिया और बरसते पानी को रोक दिया इत्यादि।

कबीर साहेब ने चमत्कारों का बीजक में घोर विरोध किया है। परन्तु आश्चर्य है कि उनके कुछ भक्तों ने उनके जीवन पर ही चमत्कारों का आरोप कर दिया है। महापुरुषों के तथ्यपरक ज्ञान एवं सदाचार के वर्णन में ही भक्त लोग संतोष नहीं करते। वे भावविह्वल होकर उनके विषय में चमत्कार गढ़ने लगते हैं। संसार का कोई महापुरुष भक्तों द्वारा इस सम्बन्ध में क्षमा नहीं किया गया, तब कबीर साहेब को भक्त लोग कैसे इससे अलग रख सकते थे!

४. यात्राएं और प्रचार

कबीर साहेब का मुख्य निवास काशी अवश्य था, परन्तु वे अपनी तरुण अवस्था से ही भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करने लगे थे। बंगाल से पंजाब, राजस्थान, गुजरात, द्वारका, महाराष्ट्र, दक्षिणी भारत, जगन्नाथ आदि में उनके भ्रमण के विषय में उल्लेख मिलते हैं। गुजरात के लेखक तो गुजरात में कबीर साहेब का चार बार जाना बताते हैं और कहते हैं कि सौ ऐसे चिह्न हैं जो आज भी कबीर साहेब का गुजरात में भ्रमण की गवाही देते हैं।

कबीर साहेब का गुजरात के पाटन, शुक्लतीर्थ (जो भड़ोच जिले में नर्मदातट पर है जहां कबीरबड़ आज भी विशाल रूप से खड़ा है), गिरनार, द्वारका आदि में भ्रमण हुआ था। जगन्नाथ में समुद्र के पास तो उनकी कुबरी ही गड़ी है। इस जगह कबीरमठ भी है। भारत के बाहर ईरान, बलख आदि में भी उनके भ्रमण का पता चलता है। काशी के ज्ञानी गुरुचरण सिंह ने कबीर साहेब के भ्रमणक्षेत्र का नक्शा बनाया है जो आकर्षक है।

बलख के लिए तो उल्लेख है कि जब कबीर साहब उस देश के बादशाह के राजद्वार पर पहुंचे तो वे राजभवन में जाने लगे। द्वारपाल ने रोका। कबीर साहेब ने कहा कि मैं इस मुसाफिरखाने में थोड़ा विश्राम करूंगा, फिर चला जाऊंगा। द्वारपाल ने कहा कि महाराज! यह मुसारिफरखाना नहीं, राजमहल है। कबीर साहेब ने कहा—

यहां कौन रहता है?

बादशाह सुल्तान।

इसके पहले कौन रहता था?

इसका पिता।

उसके पहले कौन रहता था?

उसका पिता।

सुल्तान के बाद कौन रहेगा?

उसका पुत्र।

कबीर साहेब ने कहा कि इसी को कहते हैं मुसारिफखाना जहां एक जाये और दूसरा आये।

कहा जाता है कि बादशाह ऊपर छत पर घूम रहा था। उसने यह सारी वार्ता सुन ली और द्वारपाल द्वारा कबीर साहेब को अपने पास बुलाया। उसने पहले से कबीर साहेब की महिमा सुन रखी थी। वह उनके दर्शन पाकर खुश हो गया। उसने कबीर साहेब की शिष्यता स्वीकार ली। कबीर साहेब तो अपनी संतमंडली सहित काशी चले आये। परन्तु कुछ दिनों में बादशाह राजपाट

छोड़कर विरक्त हो गया और काशी आकर कबीर साहेब की संतमंडली में रहने लगा। उसकी प्रशंसा में कबीर साहेब के नाम से एक शब्द प्रचलित है—

सुल्ताना बलख बुखारे दा।
शाही तजकर लिया फकीरी, सद्गुरुज्ञान[1] पियारे दा॥ 1 ॥
तब थे खाते लुकमा उमदा, मिश्री कंद छुहारे दा।
अब तो रूखा सूखा टूका, खाते सांझ सकारे दा॥ 2 ॥
रचि-रचि कलियां सेज बिछातीं, फूलों न्यारे न्यारे दा।
अब धरती पर सोवन लागे, कंकर नहीं बुहारे दा॥ 3 ॥
जा तन पहने खासा मलमल, तीन टंक नौ तारे दा।
अब तो भार उठावन लागे, गुद्दर दस मन धारे दा॥ 4 ॥
जाके संग कटक दल बादल, झण्डा जरी किनारे दा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, फक्कड़ हुआ अखारे दा॥ 5 ॥

गुजरात भ्रमण के विषय में बाबा दीनदरवेश (वि० सं० 1768-1889) ने कहा है—

पाटन

पाटण नग्र सुहावना, बगिया देखि मुरझाय।
संत कबीर ठाढ़े रहे, कलि-कलि मुसकाय॥
कलि-कलि मुसकाय, मालन बड़ी सुभागी।
रत्ना दे शुभ नाम, संत चरणानुरागी॥
कहत दीन दरवेश, मिटि गये आवागमना।
गुलशन हुए गुल्जार, पाटण नग्र सुहावना॥

कबीरवट

संत कबीर दया-निधि, रेवा के तीरे आय।
गोसैंया की पीर को, साहेब दिये मिटाय॥
साहेब दिये मिटाय, संत महिमा अपारी।
सूखे काठ जियाय, सद्गुरु की बलिहारी॥
कहत दीन दरवेश, महातम कबीरवट ही को।
साहिब मेरा सलाम, कबीर गुरु दयानिधि को॥

---

1. **'अल्ला नाम पियारे दा' पाठांतर है।**

शुक्लतीर्थ

जहां संतन वासा किये, सकल तीर्थ का बास।
रेवा के तीरे आय के, साहिब कीन्ह निवास॥
साहिब कीन्ह निवास, सकल तीरथ पिछनाये।
भक्त संत औ साध, सकल तीरथ फल पाये॥
कहत दीन दरवेश, संत को तीर्थ बनाया।
संत कबीर दीदार, सकल तीरथ को पाया॥

गिरनार

आये गढ़ गिरनार पे, साहिब परहितकार।
साध सिद्ध को भेटिया, अबधू लीला अपार॥
अबधू लीला अपार, घेरीनाथ गुरुदेवा।
प्रेमे मिलही आप, बड़ा संतन को भेवा॥
कहत दीन दरवेश, साईं को साहेब प्यारा।
सोहम संत कबीर, ठाढ़े गढ़ गिरनारा॥

द्वारका

द्वारामति में जाय के, ठाढ़े संत कबीर।
द्वारिका के ईश को, प्रेमे झुकावे सीर॥
प्रेमे झुकाये सीर, झुकाने वाले आये।
भक्तन के हितकार, संत दर्शन को पाये॥
कहत दीन दरवेश, कबीर चौरा कहलाया।
साहेब संत कबीर, द्वारामति में आया॥

कबीर साहेब जब भड़ोच के पास नर्मदातट पर शुक्लतीर्थ में तत्त्वा-जीवा के यहां पधारे थे, तब सूरत के प्रसिद्ध वैष्णव संत निर्वाण जी महाराज ने वहां आकर उन्हें अपने यहां के लिए निमंत्रित किया था। जब कबीर साहेब निर्वाण जी महाराज के यहां सूरत पहुंचे तब उनके स्वागत एवं सत्संग में जिस प्रकार निर्वाण जी महाराज लीन हुए उसे देखकर वहां एकत्रित वैष्णव संत तथा समाज आश्चर्य-चकित रह गये। जब कबीर साहेब प्रात:काल वहां से चलने लगे, तब उन्होंने निर्वाण जी महाराज से कहा कि आज से आपको लोग निर्वाण साहेब कहेंगे। सचमुच वे तब से इसी नाम से पुकारे जाते हैं। सूरत में आज भी उनकी समाधि पर निर्वाण साहेब ही लिखा है। संत कवि दुलाराम ने लिखा है—संत कबीर समागम, साहिब लिखे निरवान। 'दूला' ता दिन साधकी, साहिब नाम बखान॥

कबीर साहेब के चले जाने पर एकत्रित वैष्णव संतों ने निर्वाण साहेब से पूछा कि आप और हम सब वैष्णव हैं, अवतारवादी, सगुणवादी और मूर्तिपूजक हैं। कबीर साहेब यह सब कुछ नहीं मानते। वे तो निर्गुणवादी हैं। फिर आप कैसे उनमें इतने लीन हो गये? निर्वाण जी ने उन्हें जो कुछ समझाया उसका सार लेकर एक शब्द बनाया जो उनकी वाणी में सुरक्षित है। वह इस प्रकार है—

कबीरा से कैसे मन लुभायो।
साधु तेरे दिल में अचरज आयो ॥ टेक ॥
कबीरा से गुरु कैसे नाता, निर्गुण के गीत गायो।
हम तो सिरगुण राम के प्यारे, यहि भेद दुखदायो ॥ 1 ॥
कबीरा युगन-युगन का योगी, अवधू को पिछनायो।
रामानंद गुरु सिर पे धार के, काशी डेरा लगायो ॥ 2 ॥
भेदाभेद चतुराई छांड़े, संत से मेरी सगायो।
चरणकमल चाहूं संत का, प्रेमे रहूं लिपटायो ॥ 3 ॥
कबीर जौहरी ठाढ़े हाटमें, अबधू अभेद पिछनायो।
संत को संत जबहिं भेटा, प्रेम बदरिया छायो ॥ 4 ॥
दुर्लभ संतसमागम कीन्हो, जीवन को सुखदायो।
संतन से मेरी प्रेम सगाई, निर्वाण को यश गायो ॥ 5 ॥[1]

डॉ० कांतिकुमार सी० भट्ट गुजरात में कबीर साहेब पर अच्छे लेखक हो गये हैं। उन्होंने लिखा है कि गुजरात में शैव, वैष्णव और शाक्तों में खूनी लड़ाई चल रही थी। इसलिए वहां के उदार विचारकों ने एक कमेटी बनायी और उसके सदस्य काशी कबीर साहेब के पास भेजे कि उनसे गुजरात आने तथा इस सांप्रदायिक आग को बुझाने के लिए निवेदन किया जाये। कहा जाता है कि कबीर साहेब काशी से गुजरात गये और गिरनार पर सर्वधर्म सम्मेलन हुआ। हर मत वाले अपने-अपने मत के पक्ष में गरमागरम भाषण किये। अंत में कबीर साहेब का अध्यक्षीय भाषण हुआ जो सर्वसमन्वय, निष्पक्ष एवं एकतापरक था। इस प्रकार कबीर साहेब के प्रभाव से वहां लोगों में शांति आयी।

भट्टजी ने 'कबीर परम्परा : गुजरात के संदर्भ में'[2] एक पुस्तक लिखी है जिसमें कबीर साहेब का गुजरात में व्यापक प्रभाव का वर्णन किया है। भट्ट जी लिखते हैं—

---

1. **राम कबीर संप्रदाय, पृ० 8, डॉ० कांतिकुमार सी० भट्ट।**
2. **'कबीर परंपरा : गुजरात के संदर्भ में' प्रकाशक-अभिनव भारती, इलाहाबाद-3।**

''गुजरात में कबीर की यात्राएं एवं निवास के कारण गुजराती साहित्य समाज एवं संप्रदायों पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा। गुजरात में शैव एवं शाक्तों के बीच में व्यापक संघर्ष था। सौराष्ट्र में नाथपंथी सिद्धों तथा वैष्णवों के बीच तीव्र वैमनस्य था। कबीर ने अपना निर्गुण-भक्ति का समन्वयकारी रूप सबके सामने रखा। कबीर का विरोध एक शाक्तों की हिंसा से था तथा उन्होंने मिथ्याचार तथा दंभ का विरोध किया।''[1]

कवि मुकुन्द ने 'कबीर चरित' में लिखा है कि कबीर साहेब का प्रभाव गुजरात में इतना बढ़ गया था कि गुरु रामानंद का संप्रदाय छुप जाने लगा था।[2] डॉ० अम्बाशंकर नागर, कन्हैयालाल मुंशी, पं० दुर्गाशंकर शास्त्री, डॉ० निपुण पंड्या, श्रीकिशन सिंह चावड़ा, श्री वाड़ी लाल शाह, कवि मुकुन्द, श्री जनक दवे आदि विद्वानों ने कबीर साहेब की गुजरात यात्रा तथा उनका गुजरात के समाज, संप्रदाय, साहित्य आदि पर व्यापक प्रभाव अपनी-अपनी रचनाओं में स्वीकार किया है।

पीपा-परिचई में लिखा है—कबीर साहेब गुजरात में भ्रमण करते समय धीरे-धीरे चलते हैं और उनके पीछे संत-भक्त समाज भी धीरे-धीरे चलता है। कबीर की यात्रा गुजरात के गांव-गांव में हो रही है। लोग उनके दर्शन करते हुए उससे तृप्त नहीं होते—

शनैः शनैः धरती पग धरहीं, शनैः शनैः मारग अनुसरहीं।
गांव गांव कबीर की जाता, दरसन करत न लोग अघाता॥[3]

गुजराती कवि मुकुन्द गुगुली ने अपने भक्तमाल (सं० 1708) में लिखा है कि रामानन्द के शिरोमणि शिष्य कबीर गुरुकृपा से पीरों के भी पीर हुए थे। सर्वत्र 'कबीर', 'कबीर' सुन पड़ता था।[4] गुजरात में कबीर साहेब की यात्रा के उपलक्ष्य में एक कुण्डलिया के अन्त में दीनदरवेश जी ने कहा है—

कहत दीन दरवेश 'सत' का शब्द सुनाया।
करुणासिन्धु कबीर बन्दी छुड़ावन आया॥

गुजराती के समर्थ आलोचक श्री व० क० ठाकोर ने कबीर की वाणी का मूल्यांकन करते हुए उसे ''सिद्ध मन्त्रों की चमत्कारिक गुटिका'' कहा है। यथा—

---

1. **वही, पृ० 315।**
2. **प्रा० का० मा० ग्र० 11/250।**
3. **कबीर परम्परा : गुजरात के संदर्भ में, पृ० 310।**
4. **वही, पृष्ठ 310।**

अन्या अन्यन परचामरि ए पदावलि।
ए मंत्र-सिद्ध गुटिका भव-तापि हारि॥
आत्मा तणी तरस, भूख निवारती ए।
हंता तणी अमरता, सरजंत ए सुधा।[1]

अखा-परम्परा के नड़ियाद-निवासी महात्मा संतराम जी महाराज ने कबीर-वाणी का महत्त्व समझाते हुए कहा है—

आधी साखी कबीर की, कोटि ग्रन्थ करि जान।
संत राम जग झूठ है, सुरति-शब्द पहिचान॥[2]

अनेक कवियों तथा लेखकों ने कबीर साहेब का भ्रमण गुजरात, राजस्थान, पंजाब, बलख-बुखारे, उत्तराखंड, मगध, वैशाली, अंग, बंग, आसाम, उड़ीसा, मध्यभारत, कर्नाटक तथा दक्षिणी भारत के अनेक स्थलों में चित्रित किया है। कबीर साहेब ने स्वयं बीजक साखी (316) में कहा है—

देश विदेश हौं फिरा, गाँव-गाँव की खोरि॥

9. प्रामाणिक रचना बीजक

कबीर साहेब की प्रामाणिक रचना बीजक है। उसी की टीका-व्याख्या कबीरपंथ में होती चली आयी है। इसाई लेखक अहमदशाह और प्रेमचन्द ने बीजक का इंगलिश में क्रमशः पद्य और गद्य में अनुवाद किया। 'वेस्टकाट' तथा 'की' ने अपने ग्रंथ 'कबीर ऐंड द कबीरपंथ' तथा 'कबीर ऐंड हिज़ फालोवर्स' में बीजक को ही अधिक श्रेय दिया। हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के विद्वान डॉ० शुकदेव सिंह ने मूल बीजक का संपादन कर तथा उस पर विचारपूर्ण भूमिका लिखकर एक स्तुत्य काम किया है। उन्होंने सुझाव दिया कि विद्वान लोगों का बीजक से उदासीन रहकर केवल कबीर के नाम पर प्रचलित अन्य वाणियों के संग्रह तथा ग्रंथावली से संतोष करते रहना कदापि उचित नहीं है। डॉ० जयदेव सिंह तथा डॉ० वासुदेव सिंह ने भी बीजक की टीका की और अभी कुछ वर्ष पूर्व डॉ० रजनी जैन ने 'कबीर बीजक में विचार और काव्य' पर एक पुस्तक लिखी।

अनेक कबीर ग्रंथावलियों, कबीर वचनावली तथा संतकबीर आदि ग्रन्थों में भी कबीर साहेब की वाणियां हैं तथा बीजक के भी स्वर-भेद से पद हैं, परन्तु उनका प्रामाणिक ग्रन्थ तो बीजक ही है। बीजक में ही कबीर साहेब के आत्म-दर्शन तथा समाज-दर्शन के सर्वांगीण वचन हैं। बीजक में ही कबीर साहेब के

---

1. **कबीर परम्परा : गुजरात के संदर्भ में पृष्ठ 311।**
2. **वही, पृष्ठ 311।**

असली स्वरूप के दर्शन होते हैं। भाष्यकारों के भिन्न दृष्टिकोणों से जैसे प्रस्थानत्रयी में विभिन्न दर्शनों की स्थापना हुई, वैसे बीजक के टीकाकारों के भिन्न दृष्टिकोणों से बीजक में भी हुई है। परन्तु इसे विवेकवान दूषण नहीं, किन्तु भूषण ही मानते हैं। ऐसा होने पर भी निष्पक्ष विचारक के लिए बीजक का वास्तविक दर्शन छिपा नहीं है।

10. वेद-किताब

यह प्राय: कहा जाता है कि कबीर साहेब ने वेद-किताब का खंडन किया है। परन्तु यह बात समझने-जैसी है। उन्होंने यह नहीं कहा है कि वेद-शास्त्र एवं किताब बिलकुल निरर्थक हैं। उन्होंने कहा है कि कोई भी पुस्तक स्वत: प्रमाण नही मानी जा सकती। कोई पुस्तक ईश्वर की या उसके अवतार या उसके पैगम्बर की बनायी है, यह मानना एक धोखा है। कोई ऐसा ईश्वर नहीं है जो किताब बनाये या किसी को आदेश देकर अपनी वाणी का प्रचार कराये। जब ऐसा ईश्वर ही नहीं है, तब उसके अवतार एवं पैगम्बर की कल्पना करना तो अपने आप निरर्थक है।

हर किताब चाहे उसका नाम वेद हो, बाइबिल हो, कुरान हो या अन्य कुछ, मनुष्य की रचना है। इसलिए हर किताब की बात की परख सहज ज्ञान, विश्व के शाश्वत नियमों तथा प्रकृति की कारण-कार्य-व्यवस्था की कसौटी से करना चाहिए। कोई बात किसी शास्त्र में लिखी होने से प्रमाण नहीं होती, किन्तु जब वैसा तथ्य होता है तब वह प्रमाण मानी जाती है।

कोई पुस्तक ईश्वरीय है, इस मान्यता ने मानवता का विखंडन किया है और किया है सदाचार के प्रचार की अपेक्षा अधिकतर क्रूरता का प्रदर्शन! क्योंकि जिसने भी उस पुस्तक को ईश्वरीय नहीं माना उसे नास्तिक, काफिर एवं नापाक कहा गया और उसे बंधन एवं नरक में जाने का अधिकारी माना गया। इतना ही नहीं, अपनी किताब को ईश्वरीय न माननेवालों की हत्याएं भी की गयी हैं। अतएव इस झूठे दावे एवं दंभ का कि हमारी किताब ईश्वरीय एवं दैवीय है, कबीर साहेब ने खंडन किया है और सब कुछ जांच-परख कर मानने की राय दी है।

11. लोकधर्म

जिस धर्म का आचरण बिना रुकावट मानव मात्र कर सके, वह लोकधर्म है। जाति, वर्ण और आश्रम के बंधनों से रहित, ऊंच-नीच, जन्मजात पवित्र-अपवित्र की धारणा से परे, देव, ईश्वर, अवतार, पैगम्बर एवं शास्त्र के बंधनों से मुक्त शुद्ध मानवीय सद्‌गुण, मन, वाणी, शरीर की निर्मलता, विचारों की स्वच्छता और स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति, अहिंसा, परहितैषिता, परोपकार

आदि लोकधर्म है। कबीर साहेब अपने जीवन में इसी का आचरण करते थे और इसी का उपदेश देते थे।

जो जातिवाद, वर्णवाद, शास्त्रवाद, पैगम्बरवाद, अवतारवाद आदि के घरौंदों में बंद है वह लोकधर्म-विरोधी संकीर्ण धर्म है। कबीर साहेब ने इसका जीवनभर विरोध किया है। उन्होंने कहा कि धर्म पर किसी ईश्वर, पैगम्बर, अवतार, शास्त्र, जाति और वर्ण का एकाधिकार एवं अधिनायकत्व नहीं है। धर्म तो मानव मात्र के भीतर प्रवाहित अंतस्सलिला है। विषयासक्ति, पक्षपात एवं दुस्स्वभावों की शिलाओं से वह अवरुद्ध है। मनुष्य को चाहिए कि इन्हें हटा दे और वह अंतस्सलिला निर्बाध बहने लगे।

कबीर साहेब के विचार से कोई संप्रदाय वाला आस्तिक और अन्य नास्तिक या काफिर नहीं है। उनके विचार से मानव मात्र समान हैं। सारे संप्रदाय मानव के कल्पित हैं। सच्चा ज्ञान एवं पवित्र आचरण ही मानव के लिए कल्याणकारी है। यही लोकधर्म है।

12. अलौकिकता के दंभ का विरोध

जैसा कि पीछे संदर्भ में इसका कुछ परिचय दिया गया है कि नाना संप्रदायों द्वारा अलौकिकता का दावा उनका एक मिथ्या दंभ है। चैतन्य सत्ता के संदर्भ में मानव के समान भी इस विश्व में कोई अन्य शक्ति नहीं है, फिर इससे बड़ी शक्ति की कल्पना करना मानवता का उपहास करना है। यह ठीक है कि संसार के सारे धर्म-संप्रदायों ने जो कुछ उलटा-सीधा किया है अपनी समझ से मानव के कल्याण के लिए ही किया है, परन्तु अधिकतम संप्रदायों ने अपने अज्ञान, पक्षपात, मिथ्या स्वार्थ, अहंकार तथा दंभ में पड़कर मानवता को गिराया है।

यह सच है कि विश्व की व्यापक जड़ सत्ता की अपनी अटूट कारण-कार्य-व्यवस्था है। मनुष्य उसमें ज्यादा हस्तक्षेप नहीं कर सकता। परन्तु यह भी उतना ही सच है कि उसे समझने वाला केवल मनुष्य ही है। अत: उसका काम है कि वह उसे समझने का प्रयास करे तथा अपनी जीवन-यात्रा में उससे सुविधा एवं निर्वाह ले।

खेद है कि अधिकतम धार्मिक संप्रदायों ने हजारों वर्षों से आश्चर्यजनक प्रतिगामी विचारों को जन्म दिया है कि "मनुष्य तुच्छ है, इसको नचाने, डुबाने एवं उबारने वाला कोई आकाशीय देव या ईश्वर है। वही समय-समय पर अवतार लेता है या अपना पैगम्बर भेजता है, अपनी किताबें भेजता है और वे ईश्वर, अवतार, पैगम्बर एवं किताब हमारे ही संप्रदाय की वस्तुएं हैं।" ये सारी बातें नितांत असत्य हैं, परन्तु इनका अहंकार संप्रदायों को इतना है कि वह उनके सिर पर चढ़कर गर्जता है। तमाशा तो यह है कि ये सारे अलौकिकतावादी

धार्मिक संप्रदाय परस्पर स्वयं को तथाकथित ईश्वर का द्वार तथा दूसरे को नास्तिक, काफिर, नापाक एतदर्थ नरक का द्वार घोषित करने पर सदैव तुले रहते हैं।

वे यह घोषणा करते फिरते हैं कि मनुष्य तो अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ तो ईश्वर है। परन्तु जिसे वे सर्वज्ञ मानते हैं वह केवल मनुष्यों के ही मन की कल्पना है। अतएव अल्पज्ञ, बहुज्ञ एवं सर्वज्ञ जो कुछ कहो, यह मनुष्य ही है। इस संसार में मनुष्य से बढ़कर या मनुष्य के समान भी ज्ञाता एवं ज्ञाननिधान कोई नहीं है। जब तक इस तथ्य को नहीं स्वीकारा जायेगा, तब तक न मनुष्य अपनी गरिमा को समझ सकेगा और न तब तक मानवता को कुचलने वाली अलौकिकता का अन्त हो सकेगा।

कबीर साहेब एक धार्मिक तथा उच्चतम संत पुरुष थे। उन्होंने उपर्युक्त तथ्य को समाज के सामने निर्भीकतापूर्वक रखा है। लोग कहते हैं कि कबीर साहेब किसी देवी-देवता को न मानकर केवल ऐकेश्वरवादी थे। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका ऐकेश्वरवाद पैगम्बरवादियों की तरह नहीं है। यह सच है कि कबीर साहेब प्राणियों के अलावा कोई देवी-देवता नहीं मानते, परन्तु यह भी उतना ही सच है कि वे अन्तरात्मा के अलावा कोई परमात्मा भी नहीं मानते। वे जीव से अलग शिव एवं मनुष्य के आपा से अलग ईश्वर की कल्पना नहीं करते।

मनुष्य के ऊपर कोई शक्ति नहीं है जो उसे डुबाने या उबारने वाली हो। वह स्वयं अपने आप के अज्ञान तथा दुष्कर्तव्यों से डूबता है तथा आत्मज्ञान एवं अपने सत्कर्तव्यों से उबरता है। हां, उसके डूबने या उबरने में दूसरे मनुष्य सहयोगी होते हैं। अतएव उसे चाहिए कि कुसंग का त्याग तथा सत्संग में अनुराग करे।

मनुष्य को चाहिए कि वह अलौकिकता का झांसा देकर अपने आप तथा दूसरे को न ठगे। उसे चाहिए कि वह अपने आप को पहचाने तथा विश्व की जड़-चेतन सत्ता तथा उसकी कारण-कार्य-व्यवस्था को भी पहचाने। मनुष्य ज्ञान की सर्वोच्च सत्ता है। उसे चाहिए कि आत्मज्ञान तथा आत्मशोधनपूर्वक स्वात्मा की गरिमा में प्रतिष्ठित हो। यही कबीर साहेब का संदेश है।

13. मानवता

सद्गुरु कबीर ने मानव-मानव के बीच में मौलिक भेद नहीं माना। सारे मनुष्य मूलत: समान हैं। वे अपने औपाधिक गुण-धर्मों के कारण योग्य-अयोग्य हैं। कबीर साहेब के मत से कोई मनुष्य जन्म से पवित्र या अपवित्र नहीं। अतएव हर मनुष्य का सभी दिशाओं में प्रगति करने का समान अधिकार है। वे जैसी योग्यता रखते हों, वैसे क्षेत्र में प्रगति करें। उन्होंने ''पण्डित देखहु हृदय

विचारी, को पुरुषा को नारी। सहज समाना घट-घट बोले, वाके चरित अनूपा। वाको नाम काह कहि लीजे, न वाके वर्ण न रूपा।'' तथा ''जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा। कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥'' (बीजक शब्द 48, 97, 75) आदि कहकर जातीय एकता के साथ-साथ नर-नारी की एकता का जोरदार समर्थन किया है।

इस मानवतावादी-पथ में अवरोध खड़ा करने वाले मुल्ला, पंडित या अन्य पुरोहितों की कबीर साहेब ने कड़ी और मधुर आलोचनाएं की हैं। परन्तु इसके साथ विवेकवान पण्डितों का आदर किया है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा—

कहहिं कबीर हम जात पुकारा, पण्डित होय सो लेय विचारा॥

(बीजक, शब्द 53)

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, बूझो पण्डित ज्ञानी॥

(बीजक, शब्द 94)

पण्डित सो बोलिये हितकारी॥ (बीजक, रमैनी 70)

बुझ-बुझ पण्डित मन चितलाय॥ (बीजक, शब्द 51)

कबीर साहेब ने पोथी-ज्ञान को पांडित्य नहीं माना है, किन्तु प्रेम को माना है। प्रेम का अर्थ है सदैव यह ध्यान रखना कि मेरे द्वारा किसी का अपमान एवं दुख न हो। सदैव दूसरों का ध्यान रखना ही प्रेम है। यही पांडित्य है। उनकी प्रसिद्ध साखी है—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पण्डित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥

14. उपदेश

कबीर साहेब ने अपने श्रोताओं एवं पाठकों को संसार एवं शरीर की नश्वरता की बहुत याद दिलायी है। मनुष्य अपने माने हुए शरीर तथा प्राप्त प्राणी-पदार्थों में आसक्त होकर अपने आप को भूला रहता है तथा सारा अनर्थ करता है। साहेब ने कहा कि हे मनुष्य, यह जीवन स्वप्न के समान है। मिले हुए प्राणी-पदार्थ भी सपने की संपत्ति की तरह हैं। आज-कल में यह शरीर रहनेवाला नहीं है। मिट्टी के कच्चे बरतन में पानी को स्थायी कैसे रखा जा सकता है!

एक दिन ऐसा होगा कि कोई किसी का नहीं रह जायेगा। घर की नारी कौन कहे, तन की नारी (नाड़ी) भी खिसक जायेगी। जंगल में राख पड़ी थी। उसके ऊपर घास उग आयी थी। वह राख भी एक दिन चमकता हुआ इंसान थी। आदमी तो एक दिन जल जाता ही है। शरीर नष्ट हो जाता है, परन्तु जीव तो नित्य है। अतएव कर्मों का सुधार करना जीवन का मुख्य कर्तव्य है।

मनुष्य को चाहिए कि चोरी, हत्या, व्यभिचार, असत्य-भाषण, परनिंदा, गाली, ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, छल, अभक्ष्य-भक्षण, शराब तथा हर प्रकार के नशा का त्याग करे।

इस संसार में कहीं किसी के राग-द्वेष में न उलझे। जीवन छोटा है। समय भागा जा रहा है। इसको व्यर्थ बातों में न लगाकर आत्म-शोधन में लगाये। पूर्ण चित्त-शुद्धि से ही भीतर चिरंतन सुख का साम्राज्य स्थापित होता है। इन बातों पर सद्गुरु रचित बीजक तथा उनकी अन्य वाणियों में अनेक रीति से समझाया गया है।

15. निरपेक्ष सत्य और सहज समाधि

सत्य को खोजने वाला स्वयं सत्य है। उसके समान कोई सत्य नहीं है। सत्य मनुष्य का आपा है, आत्मा है एवं चेतना है। वह हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, इसाई, पारसी, बौद्ध-जैन तथा हजारों संप्रदायों एवं नाम-रूपों के आवरण से परे है। उसको जहां तक शब्दों का जामा पहनाया जाता है, भ्रम पैदा करता है। वेद, कुरान, पुराण के नाना प्रकार से कहने के कारण वह नाना ढंग का नहीं हो जाता है। न उसका कोई वर्ण है, न रूप है, न वह स्त्री है, न पुरुष है। वह तो सहज चेतन स्वरूप है जो मैं के रूप में सब घटों में विद्यमान है।[1]

साधक को चाहिए कि वह मन का विस्तार छोड़ दे। जब मन शून्य हो जायेगा, तब वहां क्या रह जायेगा! वह शब्दातीत एवं दृश्यातीत अवस्था है। वहां तो केवल स्व-सहज-चेतन मात्र है।[2] जब जीव बाहर से सिमिटकर

---

1. बीजक, रमैनी 77; शब्द 75, 48, 97।

2. अवधू छाड़हु मन विस्तारा॥ 1 ॥
सो पद गहो जाहि ते सदगति, पारब्रह्म सो न्यारा॥ 2 ॥
नहीं महादेव नहीं महम्मद, हरि हजरत कछु नाहीं॥ 3 ॥
आदम ब्रह्मा नहिं तब होते, नहीं धूप नहिं छाहीं॥ 4 ॥
असी सहस पैगम्बर नाहीं, सहस अठासी मूनी॥ 5 ॥
चन्द्र सूर्य तारागण नाहीं, मच्छ कच्छ नहिं दूनी॥ 6 ॥
वेद कितेब सुमृत नहिं संजम, नहिं जीवन परिछाईं॥ 7 ॥
बाँग निमाज कलमा नहिं होते, रामहु नाहिं खुदाई॥ 8 ॥
आदि अंत मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी॥ 9 ॥
लख चौरासी जीव जन्तु नहिं, साखी शब्द न बानी॥ 10 ॥
कहहिं कबीर सुनो हो अवधू, आगे करहु विचारा॥ 11 ॥
पूरण ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे, कृत्रिम किन्ह उपराजा॥ 12 ॥
(बीजक, शब्द 22)

स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है, यही तो सहज-समाधि है। जब साधक सहज-समाधि में लीन हो गया, तब—

मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले।
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार-बार वाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूर भया तब क्यों तोले।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पायो मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले।
तेरा साहेब है घट भीतर, बाहर नैना क्यों खोले।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिलि गये तिल ओले।

16. कबीर-शिव-संवाद

महामहिम संत कबीर ठहरे काशीवासी और महामहिमापूर्ण महादेव तो अविमुक्त काशीवासी हैं ही। एक दिन मानो गंगा के दशाश्वमेध-घाट पर दोनों का साक्षात्कार हो गया हो। काशी की मिथ्या महिमा सुनते-सुनते कबीर साहेब के कान पक गये थे। उन्हें बारम्बार होता था कि कहीं शिव जी मिल जायें तो उनसे पूछूं कि यह सब क्या बखेड़ा है! संयोग था, आज मिल ही गये। कबीर साहेब शिव जी को रोककर उनसे कहने लगे—

''हे शिव जी! आपकी काशी कैसी हो गयी है? आज भी समय है, इस पर विचार कर लें। चोवा, चंदन, अगर, पान आदि से आपकी पूजा होती है और घर-घर में स्मृतियों, धर्मशास्त्रों एवं पुराणों की कथाएं होती हैं। घर-घर में विविध व्यंजनों का आपको भोग समर्पित किया जाता है। लोग नगर में हर-हर, बम-बम एवं महादेव कहकर हल्ला करते हैं और आपको पुकारते हैं। यहां आपके भक्तों की भीड़ है। इसलिए आपसे पूछने में मेरा मन भी निस्संकोच हो गया है। हम आपके सामने बालक हैं, अतएव हमारा ज्ञान थोड़ा है। आप तो परम ज्ञानी हैं। फिर आपको दूसरा कौन समझावे? जिसके मन में जैसा आता है काशी की वैसी ही महिमा हांकता है, जैसे काशी में मरने से हत्यारा भी मुक्त हो जाता है, दुराचारी भी मुक्त हो जाता है, इत्यादि बातें धर्मग्रंथों में लिख रखी हैं। हे शिव जी! मैं आपसे पूछता हूं कि ये नाना प्रकार कर्म करने वाले जीव शरीर छोड़कर कहां समायेंगे? कैसी दशा प्राप्त करेंगे, आप ही बताइए। आपकी नगरी की मिथ्या महिमा के झांसे में पड़कर यदि जीव का अकल्याण हुआ, तो यह उनका दोष नहीं माना जायेगा। यह दोष स्वयं हुजूर को पड़ेगा।

''कबीर साहेब की उक्त बातें सुनकर शिव जी हर्षित होकर कहने लगे—सुनो कबीर, जहां हम हैं वहां दूसरा कोई नहीं है। यहां यमराज नहीं आ

सकता। इसलिए चाहे जैसे कर्म करने वाले प्राणी मरें, वे मुक्त ही हैं।

"कबीर साहेब ने कहा—इन मिथ्या महिमाओं के झांसे में पड़कर भले भक्त लोग चार दिन संतोष मान लें, परन्तु अन्त में अपने-अपने कर्मों के फल सबको भोगने पड़ेंगे। मैं तो वही कहता हूं जो देखता हूं। अर्थात मैं मिथ्या महिमा का समर्थक नहीं, किन्तु वास्तविकता का समर्थक हूं।"[1]

उपर्युक्त भाव बीजक के 11वें बसंत में चित्रित है। यहां सद्गुरु कबीर ने अपनी कल्पना में शिव जी से संवाद किया है और काशी की मिथ्या महिमा को मधुर चुनौती दी है।

कबीर साहेब आध्यात्मिक क्षेत्र में एक प्रखर वैज्ञानिक थे। उनके ज्ञान एवं सावधानी के मानो सहस्त्रों नेत्र थे, जिनसे कोई त्रुटि छिपी नहीं रह सकती थी। वे जिसको झूठ समझ लेते थे उसे भरी सभा में झूठ कहने में कोई भय नहीं करते थे चाहे इसके आड़े बड़ी-से-बड़ी हस्ती आये। यही उनकी विशेषता थी जिस पर रीझकर निष्पक्ष विवेकी व्यक्ति उन्हें निराला एवं शिरोमणि संत कह देता है।

17. काशी से मगहर यात्रा क्यों?

भारत और भारत के आस-पास देशों में भ्रमण करते हुए कबीर साहेब अपना मुख्यालय काशी में ही रखते थे। इस प्रकार उनके जीवन के लगभग एक सौ उन्नीस (119) वर्ष बीत गये।[2] उनको लगा कि अब यह शरीर

---

1. **शिव काशी कैसी भई तुम्हारि, अजहूँ हो शिव लेहु विचारि ॥ 1 ॥**
चोवा चंदन अगर पान, घर घर सुमृति होत पुरान ॥ 2 ॥
बहु विधि भवने लागू भोग, ऐसो नग्र कोलाहल करत लोग ॥ 3 ॥
बहु विधि परजा लोग तोर, तेहि कारण चित ढीठ मोर ॥ 4 ॥
हमरे बलकवा के इहै ज्ञान, तोहरा को समझावै आन ॥ 5 ॥
जो जेहि मन से रहल आय, जिव का मरण कहु कहाँ समाय ॥ 6 ॥
ताकर जो कछु होय अकाज, ताहि दोष नहिं साहेब लाज ॥ 7 ॥
हर हर्षित सो कहल भेव, जहां हम तहां दूसरा न केव ॥ 8 ॥
दिना चारि मन धरहू धीर, जस देखैं तस कहहिं कबीर ॥ 9 ॥
(बसन्त 11)

2. **कुछ लोग इतनी लंबी आयु को असंभव मानते हैं, परन्तु असंभव मानने की कोई बात नहीं होनी चाहिए। कबीरपन्थ के एक तपस्वी एवं विद्वान संत श्री हनुमान साहेब ने एक सौ आठ (108) वर्ष की आयु में काशी में 18-4-88 ई० को अपना शरीर छोड़ा है। जयपुर के एक मियां एक सौ अढ़तीस (138) वर्ष की उम्र में गत वर्ष में शरीर त्याग किया है।**

अधिक दिन नहीं चलेगा। उन्होंने सोचा कि काशी से मगहर चला जाना है और वहीं शरीर छोड़ना है। ऐसा उन्होंने क्यों सोचा? कुछ पुरोहिताऊ लेखक, उथले अध्येता एवं अपरिपक्व समीक्षक लिखते हैं कि यह कबीर का एक हठ था, जिससे उन्होंने काशी की अवमानना की, अथवा काशी के लोगों से उत्पीड़ित होकर वे मगहर चले गये आदि।

ये अपने आप को विद्या के धनी मानने वाले महानुभाव न सम्यक अध्ययन करने का परिश्रम करना चाहते हैं, न पक्षपात की चादर अपने ऊपर से उतारना चाहते हैं और न सहृदय होकर निष्पक्षतापूर्वक समीक्षा करना चाहते हैं। ये लोग अधिकतर एक नयी खोज के नाम पर कल्पित वक्तव्य दे डालते हैं। इससे किसी महापुरुष का इतिहास खराब होता है इसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं।

किसी भी स्वतन्त्र विचार का पहले मजाक उड़ाया जाता है, फिर विरोध किया जाता है और इसके बाद उसे स्वीकारा जाता है। यह मानव-मानसिकता का वैज्ञानिक स्वरूप है। कबीर साहेब का मुल्ला एवं पुरोहितों द्वारा विरोध एवं शासन द्वारा उत्पीड़न हुआ था, इसका उनके प्रामाणिक ग्रन्थ बीजक में कुछ पता नहीं लगता। ''साँच कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।''[1] जैसे पदों का अर्थ एक सामान्य कहावत है। परन्तु उनके इतने स्वतन्त्र कथन एवं मुल्ला तथा पुरोहितों के पाखंड के खंडन को लेकर उनका विरोध अवश्य हुआ होगा। मुल्ला-पंडित तात्कालिक शासनाध्यक्ष को उत्तेजित कर कबीर साहेब को पीड़ित भी करना चाहे होंगे। किन्तु यह सब उनके प्रचार के आरम्भ में ही हुआ होगा। उस समय भी साधारण जनता उनके साथ थी। थोड़े दिनों में तो वे अत्यन्त प्रसिद्ध एवं पूज्य हो गये थे। वे अपनी तीस वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते उत्तरी भारत में गूंज गये थे। जब कबीर साहेब काशी से मगहर गये हैं, तो उस समय काशी में उनका विरोध होने की बात ही नहीं उठ सकती। जिसने सौ से अधिक वर्षों तक काशी में अपना मुख्य आश्रम रखा हो, वह शरीर छूटने के समय वहां से घबरा जायेगा, इसका प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

कबीर साहेब काशी से मगहर क्यों गये, इसका सरल समाधान बीजक में उपलब्ध है। यह तो प्रसिद्ध है ही कि काशी में मरकर मोक्ष होता है। कबीर साहेब के समय में यह भी भ्रम था कि मगहर में मरनेवाला गधा होता है। उधर बौद्धों का अवशेष तथा नाथपंथियों का प्रचार रहा। इसलिए सनातनधर्मी पंडित उसकी उपेक्षा करने के लिए ऐसा कहते रहे होंगे। काशी में पंडे-पुरोहितों की पुजाई तथा आमदनी बढ़े, इसलिए काशी की मिथ्या महिमा हांकी जा रही थी। कबीर साहेब हर अन्धविश्वास के विरोधी थे, और उन्हें स्वरूपस्थिति एवं

---

1. **बीजक, शब्द 4।**

आत्मस्थिति रूपी रामभजन का केवल विश्वास ही नहीं, अपरोक्ष अनुभव था। अतएव वे समझते थे कि वासनाओं का त्यागी चाहे जहां शरीर छोड़े वह मुक्त ही है और वासनाओं में बंधा व्यक्ति बंधा ही रहेगा चाहे काशी में शरीर छोड़े और चाहे अन्यत्र। अतएव उन्होंने सच्ची साधना, रामभजन एवं स्वरूपस्थिति का महत्त्व प्रतिष्ठित रखने तथा झूठे आश्वासन को निरस्त करने के लिए अन्त वेला में काशी से मगहर प्रस्थान किया। यह उनका जरजर अवस्था में अप्रतिम साहस था। यह उनके संतत्व, सत्यत्व, वीरत्व एवं शिवत्व की पराकाष्ठा थी। सभी मिथ्या श्रेष्ठता एवं मिथ्याहीनता का विरोध करनेवाले कबीर साहेब ने उक्त मिथ्या धारणा का विरोध ही नहीं किया, किन्तु उसे व्यावहारिक रूप देकर काशी त्यागकर मगहर जा बसे।

18. काशी से मगहर

कबीर साहेब ने काशी में घोषणा कर दी कि मैं काशी में शरीर न छोड़कर मगहर में छोड़ने के विचार से काशी से मगहर जाऊंगा। यह बात काशी नगर की चर्चा बन गयी। काशी स्थित मिथिला देश के पंडितों का एक दल कबीर साहेब से मिलने आया। उसने कहा कि महाराज, आप क्या कर रहे हैं? सारा जीवन काशी में बिताकर मरती वेला मगहर क्यों जा रहे हैं? काशी मोक्ष-धाम है और मगहर में मरनेवाला गधा होता है। अत: आप-जैसे संत काशी छोड़कर मगहर जायें, यह शोभा नहीं देता। महाराज, क्षमा करें, आप भूल करते हैं।

कबीर साहेब ने मुस्कराते हुए मैथिली पंडितों को समझाया—"हे पंडितो! तुम लोग ही बुद्धि के भोले हो। जैसे पानी में पानी मिल जाने पर उसे अलग नहीं किया जा सकता, वैसे राम में लीन व्यक्ति को राम से अलग नहीं किया जा सकता। कबीर तो निज स्वरूप-राम में पूर्णतया लीन है, अब कौन ऐसी शक्ति है कि उसे उससे अलग कर दे! क्या मगहर मुझे आत्माराम से अलग कर देगा! क्या संसार में कोई शक्ति है जो स्वरूपस्थ व्यक्ति को स्वरूप से अलग कर दे?

"हे मित्रो! यदि तुम लोग मिथिला के सच्चे पंडित हो, तो तुम लोगों का मरण भी मगहर के पास एवं मगहर में ही होना चाहिए। क्योंकि जो मगहर में मरता है वह मरने नहीं पाता, अर्थात अमरत्व एवं मोक्ष प्राप्त करता है, और जो मगहर से अलग मरता है, वह मानो राम को, अपने अन्तरात्मा को लज्जित करता है। अतएव तुम लोगों को भी मगहर में ही मरने की तैयारी करना चाहिए।"

पंडित लोग अपना दावं लगता देख प्रसन्नता से उछल पड़े और उन्होंने तड़ाक से कबीर साहेब को पकड़ना चाहा और कहा—"तब हम और आप समान विश्वासी हुए। हम काशी में मरकर मुक्ति मानते हैं और आप मगहर में

मरकर।'' परन्तु कबीर साहेब कच्चे धागे के नहीं बने थे। वे असावधान नहीं थे। वे केवल उच्चतम सन्त ही नहीं थे, किन्तु महान प्रातिभ, प्रगल्भ एवं प्रत्युत्पन्नमति (हाजिर जवाब) भी थे। वे व्यंग्य करने और चुटकी काटने में प्रवीण थे। वे सामान्य बातों, रूपकों, प्रतीकों आदि में अध्यात्म की ऊंची-ऊंची बातें घटा देने में निपुण थे। श्रोताओं को अचम्भे में डालकर और उनमें उत्सुकता उत्पन्न कर अपनी बात कहने में माहिर कबीर साहेब ने कहा—

''मैं उस मगहर में मरकर मुक्ति की बात नहीं करता हूं जो गोरखपुर के पश्चिम में पड़ता है, जो एक गांव है। मेरे मोक्षस्थल का मगहर है ज्ञानमार्ग! मग = रास्ता, हर = ज्ञान—मगहर = ज्ञानमार्ग। हे पंडितो! किसी भौतिक स्थल में मरकर मोक्ष की कामना करना व्यर्थ है। केवल ज्ञानमार्ग ही मोक्ष का स्थान है। यही आध्यात्मिक मगहर है।

''जो गोरखपुर के पास वाले मगहर-गांव में मरता है वह गधा होता है, यह धारणा तो बिलकुल ही व्यर्थ है। इस मान्यता में तो राम-भजन का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता है। इससे तो मगहर बड़ा हो गया और राम छोटा हो गया। मगहर बलवान हो गया और राम दुर्बल हो गया। नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। जैसे जीव के निकल जाने पर शरीर दो कौड़ी का भी नहीं है, वैसे राम-भजन छोड़ देने पर काशी-अयोध्यादि की कोई कीमत नहीं है। सबका मूल्य राम के नाते है। एक अंक लिख दीजिए और उसके दायें शून्य लगा दें तो एक का दस हो गया, और एक शून्य और लगा दें तो सौ हो जायेगा। जितना शून्य लगाते जायें उतना दस गुणा बढ़ता जायेगा, परन्तु एक अंक को हटा दें तो सारे शून्य निरर्थक हो जायेंगे। इसी प्रकार एक राम के नाते ही संसार की सभी वस्तुओं की कीमत है, और राम को हटा देने पर सब मूल्य-रहित हो जाते हैं। अतएव जो राम में निरन्तर रमता है उसका मगहर आदि कोई भौतिक स्थल क्या बिगाड़ देगा!

''इसलिए यदि हमारे हृदय में निरन्तर राम का स्मरण है, यदि हम सदैव स्वरूप-राम में लीन हैं, तो क्या काशी, क्या मगहर और क्या ऊसर जमीन! कहीं भी शरीर छूट जाये इससे क्या अन्तर पड़ता है! इसलिए यदि कबीर काशी में शरीर छोड़कर मुक्ति की कामना करता है तो मानो उसने मुक्ति को समझा ही नहीं है और उसे राम-भजन का कोई भरोसा ही नहीं है। जिसके हृदय में संसार है ही नहीं, अपितु केवल राम ही है एवं हर समय आत्माराम में ही विश्राम है, वहां सब समय मोक्ष है। मोक्ष देश और काल से वाधित नहीं होता, अपितु वह उससे निरपेक्ष है।

''हे पंडितो! काशी आदि तथाकथित तीर्थों की मिथ्या महिमा ने राम का, आत्मज्ञान, स्वरूपज्ञान एवं स्वरूपस्थिति का महत्त्व ही घटा दिया है। इसलिए

राम-भजन, स्वरूपस्थिति एवं आत्मस्थिति के तथ्य को प्रतिष्ठित करने के लिए मैं काशी छोड़कर मगहर जाने के लिए विचार कर लिया हूं।''[1]

19. मगहर निवास और देहावसान

सद्गुरु कबीर काशी से मगहर आ गये और उन्होंने वहां निवास किया। कहा जाता है कि माघ शुक्ल एकादशी विक्रमी संवत 1575 को कबीर साहेब का शरीर छूट गया। हिन्दू राजा वीरसिंह बघेल तथा मुसलिम राजा बिजली खां कबीर साहेब के शव को क्रमश: जलाना एवं दफनाना चाहते थे। आईन-ए-अकबरी (संवत 1655) में लिखा है कि ब्राह्मण शव को जलाना तथा मुसलमान दफनाना चाहते थे और इसको लेकर विवाद हुआ।[2]

कहा जाता है कि अंतत: कबीर साहेब का शव फूलों का ढेर हो गया। हिन्दू-मुसलमानों ने उसे बांटकर अलग-अलग समाधियां बनायी। शव तो फूल नहीं बनेगा, किन्तु शरीर भस्म हो जाने पर जो अस्थि बच रहती है, उसे फूल कहते हैं। उसी को लेकर दोनों ने समाधियां बनायी होंगी।

इस प्रकार इस महान सन्त का जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा विक्रमी संवत 1456 में जन्म तथा माघ शुक्ल एकादशी विक्रमी संवत 1575 में देहांत हुआ। खास बात है उन्होंने जो कुछ अपने जीवन में किया और कहा वह मानवमात्र के कल्याण के लिए सर्वोत्तम धरोहर है।

20. कबीर साहेब का व्यापक प्रभाव

कबीर साहेब द्वारा बहायी गई निर्गुण-गंगा की धारा आज सहस्त्रमुखी होकर भारत और भारतेतर देशों में विशाल जनमानस को आप्लावित कर रही है। जिसकी शाखा-उपशाखाओं के रूप में सैकड़ों धाराएं हैं जो सुरतिगोपाल साहेब, जागू साहेब, भगवान साहेब, धर्म साहेब, नानक साहेब, दादू साहेब, गरीब

---

1. **लोगा तुमहीं मति के भोरा॥ 1॥**
   ज्यों पानी-पानी मिलि गयऊ, त्यों धुरि मिला कबीरा॥ 2॥
   जो मैथिल को साँचा ब्यास, तोहर मरण होय मगहरपास॥ 3॥
   मगहर मरै, मरै नहिं पावै, अन्तै मरै तो राम लजावै॥ 4॥
   मगहर मरे सो गदहा होय, भल परतीत राम सो खोय॥ 5॥
   क्या काशी क्या मगहर ऊसर, जो पै हृदय राम बसे मोरा॥ 6॥
   जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहिं कहु कौन निहोरा॥ 7॥ (शब्द 103)
2. **''चूं खानए उस्तुख्वानी वा परदाख्त बरहमन बसोख्तन**
   रू आबूर्द वा मुसलमान बगोरिस्तान बुर्दन।''
   आईन-ए-अकबरी, जिल्द 2, पृष्ठ 53, न० कि० प्रे० लखनऊ, 1893
   डॉ० रामचंद्र तिवारी कृत कबीरमीमांसा, पृष्ठ 41 से उद्धृत।

साहेब, दरिया साहेब, घीसा साहेब, तुलसी साहेब, बुल्ला साहेब, गुलाल साहेब, पलटू साहेब, राधास्वामी आदि सन्तों द्वारा सैकड़ों वर्षों से प्रवाहित की गयी हैं। भारत में घूमने पर पता लगता है कि आज-कल इस निर्गुणी धारा का कितना व्यापक प्रभाव है।

इतना ही नहीं, वैदिक तथा सनातन धर्म कहे जाने वाले मतों पर भी आजकल इसका व्यापक प्रभाव है। ये मत भी जाति-वर्ण, छुआछूत, ऊंच-नीच के भेद को घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं। मूर्तिपूजा और कर्मकांड को करते हुए भी उन्हें निम्न स्तर का कहने लगे हैं और परमात्मा तो मनुष्य के भीतर एवं प्राणधारी की आत्मा ही है, इस विचार का सर्वत्र आदर होने लगा है। ''कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढ़े बन माहि। ऐसे घट-घट राम है, दुनिया जानत नाहिं।'' कबीर साहेब के इस अन्तिम सार सिद्धांत को भारतीय-मानस में सर्वमान्यता मिल गयी है।

कबीर साहेब जो चाहते थे, जो उनके विचार थे, उनमें से कितनी ही बातों को उनका नाम लिए बिना भारतीय संविधान में मान्यता मिल गयी है। आज वर्ण और वर्ग-विहीन मानवमात्र को समस्त क्षेत्रों में पहुंचने का समान अधिकार है। सनातनधर्मी महाकवियों के वर्णधर्म तथा जन्मजात ऊंच-नीच मान्यता की बातों को आज कोई जागरूक सनातनधर्मी भी नहीं सुनने वाला है। इसलिए सरकार में बैठे सनातनधर्मी कहलाने वाले लोग भी कबीर साहेब के समतावादी मूलक ही कानून बनाते तथा उसके पालन के लिए शासन की व्यवस्था करते हैं।

कबीर साहब अध्यात्म क्षेत्र के वैज्ञानिक हैं। भौतिक विज्ञान जितना बढ़ता जा रहा है उतना अन्धविश्वास घट रहा है और जितना अन्धविश्वास घट रहा है उतना कबीर साहेब के विचार अधिक समझे जा रहे हैं। प्रत्यक्ष है कि इस बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में भी कबीर साहेब पर सोचने और लिखने वाले बहुत कम थे, परन्तु आज सदी के आखिर तक देश-विदेश में उन पर सोचने तथा लिखने वालों की भीड़ हो गयी है।

हर मत-मजहब वाले अपनी बातों को केवल श्रद्धा के बल पर जनता से मनवाना चाहते हैं। वे बुद्धि का प्रयोग नास्तिकता मानते हैं। इसलिए हर मत की युवा पीढ़ी प्राय: विद्रोही होती जा रही है। कबीर साहेब का विवेकपूर्ण ज्ञान आधुनिक समाज को प्रकाश देने वाला है। इसलिए कबीर साहेब के विचार-वपन के लिए आज भारत ही नहीं, पूरे भूमण्डल की मानस-भूमि उर्वर हो चली है। अत: दिन जितने बीतेंगे, कबीर साहेब के उपदेश उतने विश्व में चमकते जायेंगे। जितना ही कबीर साहेब के विचार माने जायेंगे, उतना ही शुद्ध मानवता और आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

21. श्रद्धा और बुद्धि के संगम

श्रद्धाहीन व्यक्ति भटका हुआ है और अधिक श्रद्धा मनुष्य को जड़, हिंसक एवं क्रूर बनाती है। आदमी जहां अधिक श्रद्धा कर लेता है उसकी सड़ी-गली बातें भी सत्य मानता है और उसके अलावा उसे सत्य भी तुच्छ दिखता है। अधिक श्रद्धा के पागलपन ने सम्प्रदाय एवं मजहब वालों को ऐसा जड़ बना दिया है कि वे केवल अपने मतों को स्वर्ग एवं मोक्ष का द्वार मान लिये और अन्य मतों को नरक का द्वार। ऐसे अति श्रद्धावादियों ने दूसरे मतवालों को नीच देखा, उनकी हत्याएं कीं, उनके पूजास्थल जलाये एवं ढहाये। इसलिए अति श्रद्धा गलत है।

आज पूरे विश्व में श्रद्धाहीनता की आंधी बह रही है। एक वर्ग ऐसा है कि वह कहीं भी श्रद्धा नहीं रख पा रहा है, क्योंकि उसे सम्प्रदायों एवं धर्मग्रन्थों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण कम दिख रहे हैं।

कबीर साहेब श्रद्धा और बुद्धि के संगम हैं। वे महा बुद्धिवादी हैं और धर्म के क्षेत्र में फैले अन्धविश्वासों का बीन-बीनकर खण्डन करते हैं। उन जैसा खण्डन करने वाला बुद्धिवादी धर्म के क्षेत्र में दूसरा मिलना कठिन है।

परन्तु वे जानते हैं कि नाना मत-मजहबों में फैले सन्त-भक्तों के सदाचार, इन्द्रिय-निग्रह, मन-विजयता, अन्तर्मुखता और आध्यात्मिक अनुभूति के अमृत-रस मानवमात्र के लिए कितने कल्याणदायी प्रेरक हैं। इसलिए कबीर साहेब विश्व के सभी सन्त, भक्तों एवं पीर-औलिया के लिए श्रद्धालु हो जाते हैं। जो इन्द्रिय-मन की घुड़दौड़ से लौटकर अन्तर्मुख हो जाता है, वह सन्तुष्ट हो जाता है। उसके जीवन में हाय-तोबा नहीं रहता। वह धन्य है। कबीर साहेब ऐसे सभी की प्रशंसा में कहते हैं—

"हे सन्तो! किसी भी मत के सत्संगी भक्त एवं ज्ञानी हों वे प्रेम एवं शांति अमृत-रस का प्याला पीते हैं। वे इन्द्रियों को जीतकर, मन को वश में कर कामना और कर्म पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए उनका मन आनन्द का निर्झर हो जाता है। गोरखनाथ, दत्तात्रेय, वसिष्ठ, व्यास, हनुमान, नारद, शुकदेव मुनि, शिव, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, अंबरीष, याज्ञवल्क्य, जनक, जड़भरत, शेष, ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, शबरी—कहां तक गिनाया जाये। त्यागी और गृहस्थ सभी साधक अनुभूति की मस्ती में दीवाने हुए। निर्गुण ब्रह्म को सगुण कृष्ण मानकर उनकी भक्ति में वृन्दावन में आज भी भक्तों को खुमारी चढ़ी रहती है। चाहे सुर हो, चाहे नर हो और चाहे पीर तथा औलिया हो, जिसने इस अध्यात्म-रस को पिया, वही इसके आनन्द को जानता है। जैसे गूंगा शकर खाकर उसका केवल अनुभव करता है, वर्णन नहीं कर सकता, वैसे

साधक उस शांति का अनुभव कर सकता है, व्याख्यान नहीं।''[1]

इस प्रकार कबीर साहेब की वाणी शुद्ध श्रद्धा और शुद्ध बुद्धि का संगम-सागर है; क्योंकि वे स्वयं श्रद्धा और बुद्धि के संगम हैं। आज के भटके हुए तार्किकों तथा श्रद्धालुओं के कल्याण के लिए कबीर साहेब की वाणी महौषध है।

22. कबीर साहेब के विषय में महात्माओं और विद्वानों के उद्गार

कबीर साहेब की महत्ता को स्वीकार कर महात्मा और विद्वानों ने जितने अपने उद्गार प्रकट किये हैं उनमें से थोड़ा-थोड़ा ही संग्रह किया जाये तो एक बड़ी पुस्तक बन जायेगी। यहां कुछ संतों एवं विद्वानों के किंचित वाक्यों का दिग्दर्शन मात्र किया जायेगा।

प्रसिद्ध वैष्णव संत नाभादास भी महाराज (सं० 1640) ने भक्तमाल में छह पंक्तियों में जो कुछ कहा है, मानो उसी की व्याख्या विद्वान जन आज तक कर रहे हैं। वे ये हैं—

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षटदरसनी।
भक्ति विमुख जो धर्म ताहि अधरम करि गायो।
योग यग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।
पच्छपात नहिं बचन सबहिं के हित की भाखी।
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षटदरसनी।

---

1. **सन्तो मते मातु जन रंगी ॥ 1 ॥**
पियत पियाला प्रेम सुधारस, मतवाले सत्संगी ॥ 2 ॥
अर्धे उर्धे भाठी रोपिनि, लेत कसारस गारी ॥ 3 ॥
मूँदे मदन काटि कर्म कस्मल, सन्तति चुवत अगारी ॥ 4 ॥
गोरख दत्त वशिष्ठ व्यास कपि, नारद शुक मुनि जोरी ॥ 5 ॥
बैठे सभा शंभु सनकादिक, तहां फिरै अधर कटोरी ॥ 6 ॥
अम्बरीष और याज्ञ जनक जड़, शेष सहस मुख फाना ॥ 7 ॥
कहाँ लौ गनौं अनन्त कोटि लौं, अमहल महल दिवाना ॥ 8 ॥
ध्रुव प्रहलाद विभीषण माते, माती शेवरी नारी ॥ 9 ॥
निर्गुण ब्रह्म माते वृन्दावन, अजहूँ लागि खुमारी ॥ 10 ॥
सुर नर मुनि यति पीर औलिया, जिन रे पिया तिन जाना ॥ 11 ॥
कहैं कबीर गूंगै की शक्कर, क्यों कर करे बखाना ॥ 12 ॥

(बीजक, शब्द 12)

कबीर साहेब के जीवन-काल में ही भक्तराज पीपा ने 18 पंक्तियों के एक लम्बे पद में कबीर साहेब के महत्त्व का प्रदर्शन किया है जिसकी केवल तीन पंक्तियां लें—

जो कलि मांझ कबीर न होते।
तो ले....वेद अरु कलियुग मिल करि भगति रसातल देते ॥
नाम कबीर सांच परकास्या तहां पीपै कछु पाया ॥[1]

यहां कलियुग के सहित वेद को भक्ति का डुबाने वाला कहा गया है। यहां वेद का अर्थ प्रसिद्ध ऋक् आदि चार वेद नहीं हैं, किन्तु शास्त्रप्रमाण की गतानुगतिका है।

कबीर साहेब के शरीरांत के असी (80) वर्ष बाद अकबर महान के राज्यकाल में महान विद्वान अबुल फजल अल्लामी ने स्वरचना आईन-ए-अकबरी में दो जगह कबीर साहेब का महत्त्वपूर्ण उल्लेख किया है। एक उल्लेख काफी होगा—

''कोई कहते हैं कबीर मुवाहिद (एकात्मवादी) यहां विश्राम करते हैं और आज तक उनके काव्य और कृत्यों के सम्बन्ध में अनेक विश्वस्त जनश्रुतियां कही जाती हैं। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा अपने उदार सिद्धांतों और ज्योतित जीवन के कारण पूज्य थे और जब उनकी मृत्यु हुई तब ब्राह्मण उनके शरीर को जलाना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे।''[2]

तत्त्वा और जीवा नाम के दो ब्राह्मणबंधु भड़ौच जिले के शुक्ल तीर्थ के पास नर्मदा नदी की बायीं ओर रहते थे। कबीर साहेब उनके यहां पधारे थे। कबीर साहेब के चरण धोकर उस जल को तत्त्वा-जीवा ने सूखे बरगद की जड़ में डाल दिया था और कहा जाता है पेड़ हरा[3] हो गया। आजकल यह कबीर-बड़ नाम से प्रसिद्ध है। यह सरकार के संरक्षण में है। इसी के नीचे राम कबीर मत वालों का कबीर मन्दिर बना है। कार्तिक पूर्णिमा को इसी पेड़ के नीचे मेला लगता है। इसकी शाखाएं बहुत दूर तक फैली हैं।

सन्त गरीब साहेब कहते हैं—

गरीब तत्त्वा जीवा को मिले, दक्षिण बीच दयाल।
सूखा ठूंठ हरा हुआ, ऐसे नजर निहाल ॥

---

1. **डॉ० रामकुमार वर्मा, संतकबीर, पृष्ठ 51।**
2. **डॉ० रामकुमार वर्मा, संतकबीर, पृष्ठ 37।**
3. **पेड़ की जड़ में सार रहा होगा और जल डालने से हरा हो गया होगा। महत्त्व इसका नहीं है। महत्त्व है कि कबीरबड़ एवं तत्त्वा-जीवा के आश्रम में गुजरात में कबीर-विचारों का प्रचार हुआ।**

उपर्युक्त स्थल पर जब सद्गुरु कबीर विराजमान थे तब एक ज्ञानी जी नाम के सन्त उनके दर्शन के लिए आये और वे उनके शिष्य हो गये। उन्होंने ही राम कबीर मत चलाया।

ज्ञानी जी कहते हैं—

ज्ञानी गुरु सेवा करी, मन निश्चल धरि धीर।
तीन लोक में गाइये, कहैं कबीर कबीर॥
बटक बीज के मांझ में, अटक भया मन थीर।
जन ज्ञानी का संसा मिटा, सद्गुरु मिले कबीर॥
सद्गुरु मिले कबीर जी, देखा नैन समान।
आपा माहे आप है, तो कासो कहीय आन॥

(ज्ञानी ग्रन्थावली)

गुजरात के जीवन जी महाराज ने लिखा है—

द्वापर कान्हा प्रगट्यो, त्रेता में रघुवीर।
कलिकाल में जीवणा, प्रगटे सन्त कबीर॥
यमुना तीरे यादवो, सरजू तीरे रघुवीर।
गंगा तीरे जीवणा, प्रगटे सन्त कबीर॥
सब के सद्गुरु कबीरजी, ममता करो जन कोय।
औ दुनिया को जीवणा, सद्गुरु घर को जोय॥

(उदाधर्म पंचरत्न माला)

दादूदयाल साहेब (वि० 1601-1660) लिखते हैं—

जेथा सन्त कबीर का, सोई वर वरि हूं।
मनसा वचा कर्मना, मैं और न करि हूं॥

मलूक साहेब कहते हैं—

कासी तजि गुरु मगहर आये, दोउ दीनन के पीर।
कोई गाड़े कोई अग्नि जरावे, नेक न धरते धीर॥
चार दाग से सतगुरु न्यारा, अजरो अमर शरीर।
दास मलूक सलूक कहत है, खोजो खसम कबीर॥

गुजरात के रविभाण संप्रदाय के रविराम साहेब जो अपने आप को रविदास भी कहते हैं, लिखते हैं—

रविदास सो राहो ढूढ़ते, जिस राहा गया कबीर।
रविदास वहां पहोंचिया, ज्यां रामानन्द कबीर॥

बुझत रबी कबीर के, बूझत कोउक सन्त।
रामानन्द पे बूझिया, जबही मिला एकंत॥
रविभाण जी कबीर जी, एक रूप अलैख॥

गरीब साहेब (1774) कहते हैं—

पांच बरस के जब भये, काशी मांझ कबीर।
गरीब दास अजब कला, ज्ञान ध्यान गुण सीर॥
दास गरीब कबीर का चेरा। सतलोक अमरापुर डेरा॥

विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने कबीर साहेब की वाणियों के आशयों पर गीतांजलि लिखकर उसके आधार पर विश्व का प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार पाया था। जब ठाकुर जी विश्वभ्रमण के क्रम में पाश्चात्य देश गये, तब उनको पता चला कि भारत के धर्म के विषय में यहां बड़ा भ्रम है। अत: उन्होंने कबीर साहेब के सौ पदों का इंगलिश में अनुवाद कर 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर' के नाम से इंगलैण्ड में प्रकाशित किया, जिसका संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ और विश्व को भारत के धर्म की गरिमा का पता लगा। एक बार रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्रसिद्ध विद्वान भगवानदीन से कहा था—

''हम बंगालियों ने तो संस्कृत इसलिए अपनायी कि हमारे पास शब्द नहीं थे। अध्यात्म के लिए जितने शब्द चाहिए उतने शब्द बंगला भाषा नहीं दे सकती। पर तुम (हिन्दी वालों) ने कबीर जैसे सन्त के रहते संस्कृत क्यों अपनायी? कबीर ने तो हिन्दी भाषा में अध्यात्म की सारी बातें कह दी हैं और सारी शब्दावली तुम्हें दे दी है।''[1]

डॉ० पीताम्बर बड़थ्वाल लिखते हैं—''अपनी सन 1935 की हरिजन यात्रा में जब गांधीजी काशी पहुंचे थे, कबीरमठ में उनसे यह सुनकर कि मेरी माता कबीरपंथी थीं, उपस्थित जनसमुदाय को विस्मय-सा हुआ था। किन्तु जो लोग महात्मा गांधी और कबीर की विचारधारा से परिचित हैं, उनके लिए उसमें विस्मय की कोई बात नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि उन दोनों में कितना अधिक साम्य है।''[2]

प्रसिद्ध इतिहासकार पं० सुन्दरलाल कबीर साहेब की वाणियों पर लिखते हुए अन्त में लिखते हैं—''भारत की आत्मा भीतर से पुकार रही है—यदि सत्य है तो यही, और यदि भविष्य के लिए कोई मार्ग है तो केवल यही है। (भारत में अंग्रेजी राज्य, मानवधर्म)

---

1. **सरिता पत्रिका, सितम्बर, 1959, पृष्ठ 10।**
2. **कबीर और गांधी।**

रेवरन्ड जी० एच० वेस्काट ने लिखा है—कबीर हिन्दी साहित्य के पिता माने जाते हैं—

Kabir is regarded as the father of Hindi literature.

(Kabir and Kabirpanth)

डॉ० जयदेव सिंह तथा वासुदेव सिंह लिखते हैं—''18वीं शताब्दी से ही कबीर की वाणी का स्वर यूरोप में गूंजने लगा था। सन् 1758 में सर्वप्रथम एक इटैलियन साधु 'पाद्रे मार्को डेबा टांबा' ने कबीर के ज्ञान-सागर अथवा सतनाम कबीर का इटैलियन भाषा में अनुवाद किया था। उसके बाद डब्ल्यू प्राइस, जेनरल हैरट, एच० एच० विल्सन, गार्सा द तासी, हंटर, ई० ट्रम्प, ग्रियर्सन, वेस्टकाट, मैकालिफ, अंडरहिल, एफ० ई० के०, ब्रिग्स, स्मिथ, पिंकाट आदि पाश्चात्य विद्वानों ने कबीर की रचनाओं के सम्पादन, पाठानुसंधान, अनुवाद, समीक्षा आदि के रूप में जो विभिन्न कार्य किये, वे उनके व्यक्तित्व की महनीयता के ज्वलंत प्रमाण हैं।'' (कबीर वाणी पियूष, पृष्ठ 1-2)।

डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—''कबीर के समालोचकों ने अभी तक कबीर के शब्दों को तानपूरे पर गाने की चीज ही समझा रखा है, पर यदि वास्तव में देखा जाये तो कबीर का विश्लेषण बड़ा कठिन है। यह इतना गूढ़ और गम्भीर है कि उसकी महत्ता का परिचय पाना एक प्रश्न हो जाता है। साधारण समझ वालों की बुद्धि के लिए वह उतना ही अग्राह्य है जितना कि शिशुओं के लिए मांसाहार। ऐसी स्वतन्त्र प्रवृत्ति वाला कलाकार किसी क्षेत्र में नहीं पाया गया।'' (कबीर का रहस्यवाद, प्रकरण 2, पृष्ठ 5)

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—''भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और एक वाक्य में उनके व्यक्तित्व को कहा जा सकता है कि वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे—बेपरवाह, दृढ़, उग्र, कुसमादपि कोमल, वज्रादपि कठोर।'' (कबीर)

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं—''संतकबीर एक उच्चकोटि के सन्त तो थे ही, हिन्दी साहित्य में वे एक श्रेष्ठ एवं प्रतिभावान कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं तथा हिन्दी साहित्य के बाहर भी उनकी रचनाओं का पर्याप्त आदर है।''[1]

डॉ० सम्पूर्णानन्द लिखते हैं—''कबीर जैसे महापुरुष का जीवन उस हीरे के समान है जिसके कई पहल होते हैं। हर पहल अपने में सम्पूर्ण सुन्दर और

---

1. **हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 141।**

ज्योतिर्मय होता है।''[1]

पाश्चात्य विदुषी कुमारी वौदविल लिखती हैं—''कबीर भारतीय परम्परा में एक अत्यन्त श्रद्धास्पद नाम है। वे पंजाब से बंगाल और हिमालय के छोर से दक्षिण कन्याकुमारी तक एक महान कवि के रूप में स्वीकृत हैं। वे हिन्दी काव्य के पिता, महान रहस्यवादी तथा हिन्दू और मुसलमानों के द्वारा एक समान अद्वितीय महापुरुष के रूप में श्रद्धापूर्वक माने जाते हैं।'' उनका मूलवचन इस प्रकार है—

Kabir is the most revered name in Indian tradition. From Punjab to Bengal and from the Himalayan frontier to the Deccan, he is acknowledged as a great Poet (he has been called the father of Hindi poetry) and as a great mystic, venerated by Hindus and Muslims alike a unique distinction.[2]

राजनीति के विचारक, आर्यसमाज के परमभक्त श्रीयुत अलगूराय शास्त्री लिखते हैं—''भगवान कबीर की ओजस्वी वाणियों का सहारा लेकर उनके आशयों, सारों का अपने ढंग से गाकर लिखे कवि टैगोर ने जिस गीतांजलि का निर्माण किया है यह हमारे देश के गौरव को बढ़ाने वाली बात है।

''कबीर की प्रतिभा और उनकी कविदृष्टि जितनी ज्वलंत और पैनी है उससे कम ज्वलंत उनकी दार्शनिक दृष्टि नहीं है। कबीर का धर्म ओजस्वी आस्तिकवादी वैदिक धर्म के स्रोत से निकलता है।....सन्त कबीर की उच्च आध्यात्मिकता का प्रभाव युग-युग के लिए सर्वसाधारण पर पड़ा....हिन्दू-मुसिलम सभी उनके भक्त एवं शिष्य बने। सभी ने उनके काव्य, साहित्य और संगीत के मधुर स्वर का आनन्द लिया।

''आइए, उस महात्मा को स्मरण कर हम सुप्त सांप्रदायिक एवं धार्मिक विद्वेष भावना को भूलें और मानव-समानता के महान मन्त्र को हृदयंगम करें।''[3]

---

1. **कबीर अंक, पूर्वी टाइम्स, जून, 1966 गोरखपुर।**
2. **Kabir, Oxford University Press, 1974.**
3. **कबीर अंक, पूर्वी टाइम्स, जून, 1966, गोरखपुर।**